धारा...53 ग्रंथांक...260

आध्यात्मिक-संस्कृति गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य स्मरण

आचार्य कनकनन्दी के आद्यमार्गदर्शक गुरु
आचार्य विमलसागर जी जन्म शताब्दी महोत्सव

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्री धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान, बड़ौत (उ.प्र.)
2. धर्म दर्शन सेवा संस्थान, उदयपुर (राज.)

ग्रन्थांक-260 प्रतियाँ-500
संस्करण-2016 मूल्य-51/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

मुझे सफलतम बनने हेतु

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू सफलतम बनऽऽऽ
व्यवहार से आध्यात्मिक तकऽऽऽ तन-मन-आत्मा से बनऽऽऽ...(ध्रुव)

सफलतम हेतु अप्रमत्त होकरऽऽऽ आत्मानुशासी तू बनऽऽऽ
समय शक्ति का सदुपयोग करऽऽऽ सर्वत्र संयमी तू बनऽऽऽ
तन-मन संयमी बनऽऽऽ जिया...(1)...

आत्मविश्वासी-आत्मज्ञानी बनऽऽऽ आत्म-संबोधन तू करऽऽऽ
आत्म विश्लेषण-आत्म सुधार करऽऽऽ आत्मा को सुदृढ़ करऽऽऽ
आत्मानुलंबी तू बनऽऽऽ जिया...(2)...

सुव्यवस्थित-सुनियोजितऽऽऽ दूरदृष्टि सम्पन्न तू बनऽऽऽ
सुविचारित सुसंगत कार्य कोऽऽऽ प्राथमिक आवश्यकता से करऽऽऽ
दोष को अनुभव से सुधारऽऽऽ जिया...(3)...

अंधानुकरण अनर्थ त्यागकरऽऽऽ प्रतिस्पर्द्धा अन्य से न करऽऽऽ
निन्दा अपमान विवाद त्यागकरऽऽऽ सत्य-समता/(शांति) को वरऽऽऽ
शुद्धता-शांति से बढ़ोऽऽऽ जिया...(4)...

क्रोध मान माया लोभ मोह त्यागऽऽऽ ईर्ष्या द्वेष व द्वंद्व/(निन्दा)ऽऽऽ
संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागऽऽऽ अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षाऽऽऽ
निर्विकल्प-वीतरागी तू बनऽऽऽ जिया...(5)...

सरल-सहज-विनम्र बनकरऽऽऽ दृढ़ संकल्पी-स्वाभिमानी बनऽऽऽ
दीन-हीन-अहंकार त्यागकरऽऽऽ 'सोऽहं' व 'अहं' भावी तू बनऽऽऽ
'कनक' शुद्ध-बुद्ध-आनंद बनऽऽऽ जिया...(6)...

डगार (विहार में), दिनांक 13.07.2016, मध्याह्न 1.48

मेरे हर भाव-व्यवहार के प्रेरक तत्त्व

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

अनुभव से ही मैं हर काम करूँगा, सत्य-समता से मैं युक्त रहूँगा।
सुद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सहित, महान् लक्ष्य युक्त उदारता सहित।। (1)

पर-अहित पर-निन्दा-अपमान रिक्त, राग-द्वेष-मोह ईर्ष्या-तृष्णा रहित।
अंधानुकरण पर दबाव रिक्त, अन्य के अनुभव शून्य वचन रिक्त।। (2)

आगम-तर्क व अनुमान सहित, अंगस्फुरण-स्वप्न-शकुन युक्त।
अंतस्फुरण-भाव शकुन सहित, अन्य के अनुभवजन्य वचन युक्त।। (3)

महापुरुषों के आदर्श अनुकूल युक्त, लोकज्ञता सहित धैर्य से युक्त।
संकीर्ण रूढ़ि व कट्टरता से रहित, अनेकान्त-समन्वय-सौम्यता युक्त।। (4)

न्याय-नीति स्व-पर-उपकार युक्त, दूरदृष्टि-सम्पन्न-विवेक सहित।
आत्म-विशुद्धि युक्त सहजता सहित, सनम्र-सत्यग्राही-सरलता युक्त।। (5)

तन-मन-अक्ष-स्वास्थ्य-अनुकूल युक्त, संघ-समाज-राष्ट्र-विश्व हित युक्त।
मृदु-मधुरता-युक्त-सुहृदयता सहित, हित-मित-प्रिय-सत्य वचन युक्त।। (6)

ख्याति-पूजा-लाभ लंद-फंद रहित, अपेक्षा-उपेक्षा व संक्लेश रहित।
वाद-विवाद व कलह से रहित, हर भाव-व्यवहार करूँ निर्मल चित्त।। (7)

बाल्यकाल से जो मैंने अनुभव किया, स्व-पर हानि-लाभ से शिक्षण लिया।
स्व-पर-प्रयोगों से मैंने जो पाया, स्व-मार्ग दर्शन हेतु 'कनक' रचाया।। (8)

आसपुर, दिनांक 09.07.2016, रात्रि 9.37
(यह कविता श्रमण आध्यात्मनंदी से प्राप्त शिक्षा से बनी)

मेरी उपलब्धि अलौकिक-अभौतिक=आध्यात्मिक

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

मेरी उपलब्धि है लौकिक परे, धन जन मान व भौतिक परे।
तन-मन इन्द्रिय व संसार परे, राग द्वेष मोह व कामना परे।।

संकल्प-विकल्प व संक्लेश परे, आकर्षण-विकर्षण-द्वन्द्व परे।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा परे, चैतन्य चमत्कार आनंद पूरे।।

मेरी उपलब्धि शाश्वत-आत्मोत्थ, पर निरपेक्ष मौलिक स्वतंत्र।
अनंत अव्याबाध आनंद कंद, सच्चिदानंदमय शुद्ध स्वभाव।।

इसी से भिन्न सभी (ही) उपलब्धियाँ, सदेवासुर व मनुष्य कृतियाँ।
इन्द्र से लेकर चक्रवर्ती की भी, भौतिक कृत्रिम कर्म-कृतियाँ।।

ये सभी उपलब्धियाँ न होती शाश्वत, नहीं अनंत व आनंददायक।
राग द्वेष मोह क्षोभ उत्पादक, संकल्प-विकल्प व संक्लेशदायक।।

इसी से जो होता कर्मों का बंधन, उसी से मिलता है संसार भ्रमण।
जिससे अनंत दुःख होता उत्पन्न, जन्म-मरण-रोग संताप कारण।।

इन उपलब्धियों को (अतः) करता मैं त्याग।
नवकोटि से सेवता हूँ ज्ञान-वैराग्य।।

आत्मोपलब्धि हेतु ही (मैं) करूँ साधना।
'कनकनन्दी' करे सदा आत्म आराधना।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 03.06.2016, मध्याह्न 11.35

मेरी आत्मचर्चा से प्राप्त लाभ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

आत्मचर्चा से करूँ (मैं) आत्मसंबोधन, आत्मविश्लेषण सह आत्मपरिमार्जन।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र इसी से होते, जिससे संपूर्ण सही कार्य भी होते।।

मैं हूँ अनंतज्ञान दर्शन सुख वीर्यवान्, जब ऐसे होते आत्मविश्वास व ज्ञान।
तब ही सही आत्म विश्लेषण भी होता, आत्मपरिमार्जन रूपी चारित्र (भी) होता।।

इसी से होता गुण विकास व दुर्गुण नाश, हिताहित विवेक का भी होता विकास।
करणीय-त्यजनीय का भी होता सुज्ञान, जिससे होता है सही आचरण।। (1)

भावात्मक दुर्बलतायें होती है क्षीण, राग द्वेष मोहादि भी होते हैं क्षीण।
समता-सहिष्णुता-शांति उपजती, आध्यात्मिक शक्तियाँ भी प्रगट होती।।

संयम धैर्य व दृढ़ता भी बढ़ती, उत्तम कार्य सभी भी सम्पादन होते।
वैर-विरोध व संक्लेश न होते, बाधा विघ्न व द्वन्द्व भी नशते।। (2)

हिंसा झूठ चोरी कुशील व परिग्रह, त्याग होते हैं फैशन-व्यसन।
अन्याय अत्याचार शोषण मिलावट, त्याग होते आर्त-रौद्र ध्यान।।

आध्यात्मिक शक्तियाँ न क्षीण होती, अधिक से अधिक ये शक्तियाँ बढ़ती।
जिससे हर सुकार्य होते सरलता से, पाप नाश होते व पुण्य भी बढ़ते।। (3)

तीर्थंकरों ने भी ऐसे ही किया, सर्वज्ञ बनकर ऐसा ही बताया।
अभ्युदय से मोक्ष तक ये ही कारण, 'कनकनन्दी' भी करे ऐसा आचरण।। (4)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 05.06.2016, मध्याह्न 1.14

(यह कविता डॉ. शैड हेल्म्सटेटर की पुस्तक Who are you really and what do you want? से भी प्रभावित)

जैन धर्म की सर्वोत्तम विशिष्टता अहं (मैं)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

जैन धर्म की विशिष्टता जानो, अहं (मैं) ही सर्वोत्तम विशिष्ट मानो।
अहं (मैं) ही कर्त्ता-धर्त्ता व भोक्ता, संसार अवस्था से लेकर मुक्त अवस्था।। (1)

नवकोटि से जीव (स्वयं) करे परिणमन, तदनुकूल जीव (स्वयं) बांधता कर्म।
कर्मानुसार जीव करे (स्वयं) संसार भ्रमण, संसार मध्य में (स्वयं) पंच परिवर्तन।। (2)

सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव पाकर, सद्गुरु उपदेश रूपी निमित्त पाकर।
करता श्रद्धान व ज्ञान आचरण, अशुभ से शुभ में (स्वयं) करे परिणमन।। (3)

पंच पाप सप्त व्यसनों को त्यागता, पंचाणुव्रत व सेवादानादि देता।
ज्ञान वैराग्य आदि को स्वयं बढ़ाता, भाव विशुद्धि से (स्वयं) श्रमण बनता।। (4)

स्व-अध्ययन हेतु स्वाध्याय करता, तन-मन-इन्द्रियों को संयम करता।
आत्म विश्लेषण से आत्मविशुद्धि करता, अनुप्रेक्षा ध्यान से स्वयं को पावन करता।। (5)

पर संकल्प-विकल्पों को त्याग करता, आर्त्त-रौद्र ध्यान को त्याग करता।
शुभ को बढ़ाते हुए शुद्ध भी बनता, स्वयं में ही स्वयं लीन होता जाता।। (6)

घाती नाशकर अरिहंत बनता, अघाती नाशकर सिद्ध भी बनता।
सभी अवस्था में जीव प्रमुख होता, स्व (स्वयं) का कर्त्ता-भोक्ता 'कनक' ही होता।। (7)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 08.06.2016, मध्याह्न 1.48

धन्य हे! श्रमण समता वाला!

(साम्य भाव का अलौकिक-अभौतिक वैभव)

(चाल : बड़ा नटखट है रे....., जिन्दगी एक सफर.....)

धन्य है! श्रमण (जीवन) समता वाला, राग द्वेष मोह रिक्त वाला।
निस्पृह निराडम्बर शांति वाला, अलौकिक आत्मिक सुख वाला।। हो...

ध्यान-अध्ययन मौन वाला, आध्यात्मिक अनुभव करने वाला।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा रहित वाला, आत्मानंद में रमने वाला।।

परनिन्दा-अपमान चिन्ता रहित, भेद-विज्ञान भाव श्रद्धा युक्त।
अपना-पराया ऊँच-नीच रिक्त, सर्वोदय अन्त्योदय भाव युक्त।।

संकल्प-विकल्प संक्लेश रिक्त, आत्मविशुद्धि में दृढ़संकल्प युक्त।
आकर्षण-विकर्षण द्वंद रहित, चैतन्य चमत्कार वैभव युक्त।।

दीन-हीन अहंकार भाव रिक्त, स्वाभिमान सोऽहं (अहं) भाव युक्त।
तन-मन-इन्द्रिय सत्ता संपत्ति परे, शुद्ध-बुद्ध आनंद लक्ष्य युक्त।।

चौरासी लाख योनि चतुर्गति रहित, अनंत आत्मिक गुण लक्ष्य सहित।
धीर-वीर गंभीर धैर्य सहित, क्षमा मृदुता सरलता सहजता युक्त।।

तेरा वैभव अलौकिक-अभौतिक, रागी द्वेषी मोही हेतु काल्पनिक।
इन्द्रिय यंत्री से परे अनुभवगम्य, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य परम साम्य।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 15.06.2016, मध्याह्न 1.48

रागी द्वेषी मोही से रहूँ मैं तटस्थ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : दुनिया में रहना है तो.....)

अज्ञानी-मोही दुनिया में साम्य रहो प्यारे।

धैर्य धरो शान्त रहो आगे बढ़ो प्यारे।।

नहीं तो दुनिया से तेरा पार नहीं होगा।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश होता ही रहेगा।।स्थायी।। (1)

संसार तो दलदली व मकड़जाल सम,
कोल्हू के बैल सम व पानी के भ्रमर सम।

भेड़ भेड़ियाचाल सम होते मोही रागी,
इनसे बचने हेतु बनो (तू) ज्ञानी बैरागी।। (2)

मृगमरीचिका सम (होता) संसार का चमक-दमक,
दूर से ही लगता है प्रकाश व रम्य।

दूर के जंगल व ढोल की आवाज सम,
मनोहर लगते हैं ख्याति पूजा (भोग) व सम्मान।। (3)

समता-शांति से जो मिलता है आनंद,
उसे प्राप्त नहीं करते (हैं) रागी-द्वेषी भोगानंद।

ज्ञान-ध्यान व (आत्म) विशुद्धि से जो होता (आत्म) विकास,
उसे प्राप्त न करते जो राग द्वेष युक्त।। (4)

रागी द्वेषी मोही करते जो धर्म साधना,
उससे न होती उनकी आत्माराधना।

आत्माराधना करना ही मेरा है परम लक्ष्य,
अतः 'कनक' रहे रागी द्वेषी से तटस्थ।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 20.06.2016, मध्याह्न 2.23

मेरा अनुभव-पारसमणि-रत्नाहार

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा.....)

1. धीरे-धीरे मेरे अनुभव बढ़ते जा रहे हैं।
स्व-आत्मा में भी अनंत गुण समाहित हैं।।
आत्मविश्वास-ज्ञान-अनुभव से।

आत्म विश्लेषण-सुधार-संबोधन से।।

समता शांति संतुष्टी बढ़ती जा रही।
निस्पृहता वीतरागता बढ़ती जा रही।।

इसी से अन्य लोग भी प्रभावित हो रहे।
ज्ञानार्जन आहारदान ज्ञानदान कर रहे।।

भावना से प्रेरित चातुर्मास करवा रहे।
समाज संगठन व्यक्ति (गत) भी करवा रहे।।

2. समता-शांति निस्पृहता से आगे-आगे बढ़ने से।
सुयोग्य व्यक्ति भी धीरे-धीरे अनुगामी बनते।।

ख्याति पूजा लाभ हेतु या दूषित परिणाम से।
धर्म कार्य करने से भी न मिलते उक्त परिणाम हैं।।

3. अन्य की अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा से।
कोई महान् भाव काम न होते।।

4. अन्य को क्षति कर, या क्षुद्र परिणाम से।
महान् उद्देश्य प्राप्त न होते, शांति न मिले भाव से।।

5. धन-जन-मान-सम्मान, मिलना भी सुलभ है।
सत्य समता शांति मिलना ही दुर्लभ है।।

6. लौकिक से लेकर पुस्तकीय धर्मज्ञान होता सुलभ है।
सत्य-तथ्य व शोध, बोध होना दुर्लभ है।।

7. भौतिक से लेकर धार्मिक क्रियाकाण्ड ज्ञान सुलभ है।
शुद्ध-बुद्ध व आनंदमय, स्व-आत्म/(मैं) ज्ञान दुर्लभ है।।

8. सामाजिक राजनैतिक व, कानून संविधान।
सबसे ही महान् है, आध्यात्मिक अनुशासन।।

9. बुद्धि से भी श्रेष्ठ भावना, भावना से भी आध्यात्मिक।
तन से भी मन श्रेष्ठ मन से भी श्रेष्ठ आध्यात्मिक।।

10. साक्षरी से श्रेष्ठ संस्कारी, संस्कारी से भी अनुभवी।

आत्मानुभवी है सर्वोपरि, जिससे मिले मोक्षपुरी।।

11. जो कोई अच्छे या बुरे, भाव व्यवहार करते।
उसका फल वे ही भोगते भले अन्य निमित्त होते।।

12. अधिकांशजन उक्त, अनुभव से होते रिक्त।
अतएव मेरे अनुभव, उन्हें लगते हैं विपरीत।।

13. इसी से भी मैं शिक्षा लेकर, आत्मगौरव को बढ़ाता।
स्वाभिमान से 'अहं' की ओर, 'कनकनन्दी' बढ़ता।।

आसपुर, दिनांक 06.07.2016, रात्रि 9.43

कोई जाने या न जाने/(माने) मैं तो सत्य का बोध व वर्णन करूँगा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., भातुकली....., तुम दिल की.....)

कोई जाने या कोई न जाने, कोई माने या कोई न माने।
सत्य-तथ्य का ही मैं बोध करूँ, सत्य-तथ्य का ही वर्णन करूँ।।

सब कोई सब कुछ नहीं जानते, सब कोई सब कुछ नहीं मानते।
तथापि सत्य न असत्य होता, असत्य भी कभी न सत्य होता।।

सर्वज्ञ जानते अनंत सत्य उसका अनंतवाँ भाग करते उपदेश।
उसका अनंतवाँ भाग समझते गणधर तो भी सर्वज्ञ न होते बेकार।।

ज्ञान-ज्ञेय संबंध होता अनंत, अनंत ज्ञान जीवों का स्वभाव।
अनंतज्ञानी ही होते अनंत सुखी, अतएव चाहिए अनंत ज्ञान।।

भिन्न-भिन्न कार्य हेतु अलग-अलग, ज्ञान होता आवश्यक।
तो भी भिन्न-भिन्न ज्ञान न होता, सर्वथा अनावश्यक।।

वैद्य का ज्ञान व्यापारी को (भले) अनावश्यक, तथापि वैध ज्ञान नहीं व्यर्थ।
आध्यात्मिक ज्ञान भले मोही को अनावश्यक, तथापि यह ज्ञान नहीं व्यर्थ।।

भले किसी को संस्कृति संस्कार संस्कृत लगे अनावश्यक।

तथापि ये तीनों के ज्ञान होते, सर्वाधिक आवश्यक।।

अज्ञानी मोही व जो स्वार्थी होते वे तो संकीर्णता में स्थिर होते।
जो गुणग्राही प्रगतिशील ज्ञानी होते, वे तो सर्वोदय ही करते।।

जीवों का स्व-स्वरूप अनंत ज्ञान, दर्शन सुख वीर्यमय।
इसे ही प्राप्त करना भव्य व 'कनक' का परम लक्ष्य।।

'अच्छी खोज है एक तरह से भलाई'-कोई नया काम या कोई नई वस्तु की खोज यह सोचकर मत करिए कि इससे कोई फायदा होगा कि नहीं।

आप सिर्फ खोज करिए। अच्छी खोज दूसरों की भलाई के काम आ जाती है।

मैडम क्यूरी, नोबेल पुरस्कार विजेता इनके पूरे परिवार को नोबेल पुरस्कार मिले हैं। आसपुर, दिनांक 06.07.2016, अपराह्न 5.52

''आत्मवत् सर्वभूतेषु''-मेरी भावना

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति..... भातुकली.....)

हूँ मैं अभी अतः था मेरा पूर्व में अतः मैं रहूँगा भविष्यत में।
मैं हूँ सत्य अतः मेरा अस्तित्व अतः मैं रहूँगा तीनों काल में।।

सत्य है शाश्वत गुण-पर्ययवत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य (रूप) में।
करता हूँ अनुभव अतः मैं चेतन अतएव मैं चाहता हूँ आत्म सम्मान।
ऐसा ही अन्य जीव होते मेरे समान सबका करूँ मैं आत्म सम्मान।।

मैं चाहता हूँ सुख अनंत अव्याबाध, ऐसा ही अन्य जीव भी चाहते।
मैं भी सुख पाऊँ अन्य को न दुःख दूँ, भाव रूप से नवकोटि से।
अनुभव में आ रहा ज्ञान बढ़ रहा, अतः मैं ज्ञानार्जन करता रहूँगा।।

जब तक न बनूँगा सर्वज्ञ, बढ़ाता जाऊँगा ज्ञान व ज्ञानदान।
मैं जो चाहता हूँ अन्य में भी चाहता मैं चाहता हूँ सत्य-साम्य सुख।
मुझ में भी अभी दोष कर्म प्रभाव विशेष ऐसा ही अन्य जीव में करूँ विश्वास।।

मैं चाहता हूँ निर्बन्ध आध्यात्मिक स्वतंत्र, हर जीव प्रति मेरी यही भावना।
मेरा हो आत्म विकास अनंत अविनाश, हर जीव प्रति मेरी यही भावना।

सबसे शिक्षा लहूँ अतः उपकारी मानूँ, अतः किसी से न करूँ वैर भावना।
मैत्री प्रमोद माध्यस्थ भाव रखूँ, यथायोग्य 'कनक' लक्ष्य आत्म भावना।।

आसपुर, दिनांक 05.07.2016, रात्रि 10.07

मेरी युक्तता व रिक्तता

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की....., सायोनारा....., हर देश में तू.....)

ध्यान-अध्ययन-मनन-चिन्तन में मैं व्यस्त रहता हूँ।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि से मैं रिक्त/(सुस्त) रहता हूँ।।
समता-शांति व आत्मविशुद्धि में मैं पूर्ण रहता हूँ।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश से मैं शून्य रहता हूँ।। (1)
निस्पृह-निराडम्बर आत्म प्रभावना में मैं युक्त रहता हूँ।
लंद-फंद-द्वन्द्व-विग्रह से मैं मुक्त रहता हूँ।।
दबाव-प्रलोभन-याचना-चंदा-चिट्ठा से मैं रिक्त रहता हूँ।
सहज-सरल-वात्सल्य-प्रोत्साहन में मैं युक्त रहता हूँ।। (2)
धन-जन व तेरा-मेरा से, मैं विरक्त रहता हूँ।
एकता-समन्वय-सहयोग से मैं संयुक्त रहता हूँ।।
अनुभव ज्ञान-आध्यात्मिक प्रवृत्ति में मैं प्रवृत्त रहता हूँ।
परोपदेश पांडित्य, तोता रटन्त ज्ञान से मैं निवृत्त रहता हूँ।। (3)
व्यवस्थित क्रमबद्ध ज्ञान व काम में संयुक्त रहता हूँ।
अव्यवस्थित अनुशासनहीनता से मैं विरक्त रहता हूँ।।
सनम्र सत्यग्राही आत्मविश्वास में मैं सदृढ़ रहता हूँ।
अंधानुकरण हठग्राहीता से मैं अमूढ़ रहता हूँ।। (4)
'स्वाभिमान' 'सोऽहं', 'अहं' भाव में, मैं लीन रहना चाहता हूँ।
दीन-हीन अहंकार भाव-व्यवहार से मैं शून्य चाहता हूँ।।
स्वभाव-सुभाव-स्वधर्म-सुधर्म को मैं पाना चाहता हूँ।
विभाव-कुभाव-परधर्म कुधर्म से 'कनक' परे चाहता हूँ।। (5)

आसपुर, दिनांक 04.07.2016, प्रातः

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र	विषय	पृ.सं.
	प्रस्तावना	
1.	मुझे सफलतम बनने हेतु	2
2.	मेरे हर भाव-व्यवहार के प्रेरक तत्त्व	3
3.	मेरी उपलब्धि अलौकिक-अभौतिक=आध्यात्मिक	3
4.	मेरी आत्म-चर्चा से प्राप्त लाभ	4
5.	जैन धर्म की सर्वोत्तम विशिष्टता अहं (मैं)	5
6.	धन्य हे ! श्रमण समता वाला	6
7.	रागी-द्वेषी-मोही से रहूँ मैं तटस्थ	6
8.	मेरा अनुभव-पारसमणि-रत्नहार	7
9.	कोई जाने या न/(माने) मैं तो सत्य का बोध व वर्णन करूँगा	9
10.	''आत्मवत् सर्वभूतेषु'' मेरी भावना	10
11.	मेरी युक्तता व रिक्तता	11
	आध्यात्मिक संस्कृति	
1.	आध्यात्मिक संस्कृति : विश्व संस्कृति	15
2.	पूरे लोकालोक में श्रेय... मम शुद्धात्मा	15
3.	आनंद पाने के लिए	16
4.	स्व-जिज्ञासा रूपी परम तप मैं करूँ !	17
5.	मेरे अनंत गुणों का ध्यान (विभिन्न नय से)	21
6.	जैन धर्म की सर्वोच्च विशेषता (भव्य ही बनते है भगवान्)	22
7.	स्वतंत्र-मौलिक बनने की मेरी भावना	25
8.	मैं/(स्व) की उपलब्धि ही जैन धर्म रहस्य का सार (परमार्थ-I)	26
9.	स्व-शुद्धात्मा अध्ययन से मोक्ष (परमार्थ-II)	27
10.	सामाजिक से लेकर मानसिक सत्य परे हूँ ''मैं'' शुद्धात्मा (परमार्थ-III)	28
11.	भाव विशुद्धि ही परमोधर्म	29

12.	देव-शास्त्र-गुरु के माध्यम से स्व-शुद्धात्मा का श्रद्धान है : सम्यग्दर्शन	30
13.	लौकिक-आत्मविश्वास व आध्यात्मिक-आत्मविश्वास	30
14.	स्व-शुद्धात्म श्रद्धान से होता है धर्म का शुभारंभ	33
15.	आध्यात्म ही है परम स्वावलंबन...स्वाधीन अनुशासन... स्व-सुसमय स्वामी	34
16.	प्राथमिक धार्मिक-सम्यग्दृष्टि का स्वरूप	35
17.	भाव-विशुद्धि हेतु ही करणीय धर्म	36
18.	उत्तम स्वात्म चिन्ता तो पर चिन्ता अधमाधमा क्यों?	38
19.	क्षमादान-क्षमा माँगना से परे	49
20.	विश्व की सर्वोच्चताएँ	50
21.	स्व-जाति परम वैरी होते भी है जीव	53
22.	कीट-पतंग-पापी से लेकर पंच परमेष्ठी का वर्णन आगम में क्यों?	55
23.	B.A.-M.A.-Ph.D. में ज्ञान (शिक्षा) की सीमा नहीं	56
24.	झूठे धार्मिक व सच्चे धार्मिक	56
25.	अनावश्यक पाप करते हैं जीव	57
26.	संसार भ्रमण के मूल कारण अशुद्ध भाव को मैं त्यागूँ	58
27.	नवकोटि से पाप करने वाले सच्चे धार्मिक से घृणा करते	67
28.	स्व-अमूर्तिक आत्मा का परिज्ञान होता है अनुभव से	68
29.	स्व-पर गुण-दोषों से शिक्षा लो-आगे बढ़ो!	69
30.	न लोकाः पारमार्थिक	70
31.	जीवों के लिए दोष करना व पर दोष जानना सरल क्यों?	71
32.	कब, कौन कानून को हाथ में ले सकता है?!	71
33.	हिन्दी भाषा शुद्ध व संवृद्धशाली बने तो कैसे?	73
34.	बहाना एक : समस्याएँ अनेक	75
35.	हर कार्य को सफल बनाने के उपाय	75
36.	श्रेष्ठ संगति से पाऊँ आत्मोपलब्धि	76
37.	ज्ञानदाता साक्षात् गुरु का विस्मरण महान् पाप	78

38. आध्यात्मिक निस्पृह गुरु कनकनन्दी जी ससंघ के सीपुर अतिशय क्षेत्र पर चातुर्मास हेतु मंगल प्रवेश निमित्त स्वागत-मंगल गीत 92
39. सीपुर एवं आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव ससंघ द्वारा प्रभावना 93
40. आध्यात्मिक संस्कृति सबसे प्यारी (न्यारी) 94
41. विभिन्न भावों का प्रभाव चेतन-अचेतन पर 95
42. स्वात्माश्रित धर्म करूँ न कि धनाश्रित 97
43. अभिमान से परे 'स्वाभिमान'<'सोऽहं'<'अहं' भावी बनूँ! 99
44. नकल बिना स्वतंत्र-मौलिक बनूँ! 99
45. मेरा अनुभव : सर्वज्ञ है व मुझ में भी है सर्वज्ञता-शक्ति व सुप्त रूप में 100
46. मैं निष्क्रियता व आक्रामकता से परे सुदृढ़ बनूँ 101
47. भौतिक तत्त्व से भिन्न है जीव 102
48. मैं उत्तम भावना भाऊँ 103
49. अनुभवजन्य सत्य द्वारा मैं आगे बढ़ूँ! 104
50. मेरी निर्भय बनने की साधना 106
51. धन से परे ही होता है अधिक धर्म 107
52. आनंद से करूँ दुःखनाश व आत्मविकास 108
53. योग्य (भव्य) श्रोता का स्वरूप-कर्त्तव्य व फल 113
54. मेरी शिक्षा पद्धति 114
55. मेरे लिए करणीय-अकरणीय 115
56. कनकनन्दी गरुजीनु भाव ने वेवार 116
57. नैतिकजन (भद्रजन) के भाव-व्यवहार-फल 117
58. पुण्यशाली (धार्मिकजन) के भाव-व्यवहार-फल 118
59. आध्यात्मिक के भाव-व्यवहार-फल 119

आध्यात्मिक-संस्कृति

वैश्विक गान

आध्यात्मिक संस्कृति : विश्व संस्कृति

(चाल : सारे जहाँ से अच्छा....., भातुकली....., अपनी आजादी को हम....., तुम दिल की धड़कन.....)

विश्व संस्कृति में श्रेष्ठ...आध्यात्म संस्कृति ज्येष्ठ...
शुद्ध आत्मा ही श्रेय...समता-शांति सहित...विश्व संस्कृति...(ध्रुव)...

अहिंसा सत्य अचौर्य...ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह...
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र...शुचिता धैर्य संयम...2
क्षमा नम्रता मृदुता...अंतर्गत है सौम्यता...शुद्ध आत्मा...(1)...

आत्मा को परमात्मा बनाना...लक्ष्य है जिसका न्यारा...
आत्मविशुद्धि द्वारा...आत्मा को परमात्मा बनाना...2
इसी हेतु ध्यान-अध्ययन...समता-शांति-शुचि सारा...शुद्ध आत्मा...(2)...

हर जीव में साम्य भाव...ईर्ष्या घृणा द्वेष शून्य...
मद माया तृष्णा परे...प्रतिष्ठा वर्चस्व शून्य...2
सहिष्णु उदार युक्त...सर्वोदय-अन्त्योदय युक्त...शुद्ध आत्मा...(3)...

द्रव्य क्षेत्र काल भाषा...जाति मत पंथ सीमा...
काला-गोरा धनी-निर्धन...भेदभाव परे सीमा...2
सर्वस्व आध्यात्म भाव...संस्कृति वैश्विक 'कनक'...शुद्ध आत्मा...(4)...

वन्दे आत्मन...वन्दे परमात्मन...

आसपुर, दिनांक 03.07.2016, रात्रि 10.10

पूरे लोकालोक में श्रेय...मम शुद्धात्मा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सारे जहाँ से अच्छा.....)

पूरे लोकालोक में है...श्रेय उपादेय ममात्मा/(शुद्धात्मा)...
मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध आतम...चिदानन्द-शुद्ध आत्मा...पूरे...(ध्रुव)...

अनंत इयत्ता मुझमें...अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्य...
आकाश से अनंत गुणी...अविभागी प्रतिच्छेद...2
मैं इनका स्वामी कर्त्ता...धर्त्ता भोक्ता विधाता...मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध...(1)...

आदि मध्य व अंत में...एक हूँ तो भी अनंत...
सर्वज्ञ ज्ञानगम्य...उनसे भी न पूर्ण व्यक्त...2
अनुभवगम्य हूँ मैं...अक्ष-यंत्र से न गम्य/(अक्ष-मन से अतीत)...मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध...(2)...

अणु से भी मैं हूँ सूक्ष्म...ब्रह्माण्ड से भी वृहत्...
भौतिक मूल्यहीन हूँ...ब्रह्माण्डीय मूल्य से न हीन...2
अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य...अनंत गुण पर्यायमय...मैं हूँ शुद्ध...(3)...

मैं हूँ सत्य-असत्य...उभय-अनुभय हूँ...
मैं शून्य व पूर्ण हूँ...चेतन-अचेतन हूँ...2
अस्तित्व-वस्तुत्व हूँ...चिदाकार-अनाकार हूँ...मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध...(4)...

अनादि कर्म आबद्ध...ममात्मा हुआ पतित/(संसारी)...
पञ्च परिवर्तन में पाया...चौरासी लाख योनि...2
ग्राह्य-अग्राह्य मिश्र में...भोगा पुद्गल वर्गणा...मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध...(5)...

त्रैकालिक ध्रुव स्वरूप...आलंबन से अद्य...
नाशकर के समस्त...अनादि के कर्मबंध...2
बनूँ शुद्ध-बुद्ध-आनंद...'कनक' का परम श्रेय/(शुद्धात्मा द्रव्य) मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध...(6)...

आसपुर, दिनांक 01.07.2016, रात्रि 10.50

आनंद पाने के लिए...

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू....., सायोनारा.....)
जीया रे! तू आनंद पाता चलऽऽऽ
आनंद ही तेरा शुद्ध स्वरूपऽऽऽ शुद्धता को पाता चलऽऽऽ (ध्रुव)
शुद्ध-बुद्ध-आनंद पा लोऽऽऽ

आनंद मिले है तन स्वस्थ्य सेऽऽऽ इन्द्रिय व मन स्वस्थ्य सेऽऽऽ

शांत-सरल संतोष भाव सेऽऽऽ समता सौम्य भाव सेऽऽऽ
क्रोधमान-मायारिक्त सेऽऽऽ जिया...

संकल्प-विकल्प संक्लेश रिक्त सेऽऽऽ लंद-फंद-द्वंद रहित सेऽऽऽ
ईर्ष्या तृष्णा घृणा रहित सेऽऽऽ निर्द्वंद्व निर्वैर निर्भय सेऽऽऽ
उत्साह आह्लाद निराकुल सेऽऽऽ जिया...

दान दया व परोपकार सेऽऽऽ मृदुता नम्रता व क्षमा सेऽऽऽ
दोष स्वीकार व दोष परिहार सेऽऽऽ गुण प्रशंसा गुण ग्रहण सेऽऽऽ
संवेदनशील आध्यात्मिकता सेऽऽऽ जिया...

केवल सत्ता संपत्ति डिग्री (प्रसिद्धि) सेऽऽऽ भोगोपभोग फैशन-व्यसनों सेऽऽऽ
आनंद न मिलता है परपीड़न सेऽऽऽ निन्दा-अपमान शोषण सेऽऽऽ
संकीर्ण कट्टर भाव सेऽऽऽ ये आर्त्तरौद्र परिणाम सेऽऽऽ जिया...

निराकुलता व आत्मविशुद्धि सेऽऽऽ मिलता है आध्यात्मिक आनंदऽऽऽ
इससे अन्य सभी सुखाभासऽऽऽ जो है आकुलता व बंध कारकऽऽऽ
'कनक' चाहे शुद्धात्मानंदऽऽऽ जिया...

आसपुर, दिनांक 01.07.2016, मध्याह्न 2.38

स्व-जिज्ञासा रूपी परम तप मैं करूँ!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे!ऽऽ तू स्व-जिज्ञासु बनऽऽऽ!
स्व-जिज्ञासा..परम तप सेऽऽऽ आत्म विकासी तू बनऽऽऽ
स्वाध्याय परम तप करऽऽऽ/(स्वाध्याय तपस्वी तू बनऽऽऽ) जिया रे...(स्थायी)...

वाचना पृच्छना अनुप्रेक्षा सेऽऽऽ आम्नाय धर्मोपदेश सेऽऽऽ
स्व-आत्म तत्त्व अध्ययन करोऽऽऽ आगम व अनुभव सेऽऽऽ
करो हे! तत्त्वार्थ श्रद्धानऽऽऽ जिया रे...(1)...

कौन हूँ मैं..क्या है स्वरूपऽऽऽ कबसे हूँ..कब तक रहूँगाऽऽऽ
कहाँ से आया हूँ..कहाँ है जानाऽऽऽ क्या किया हूँ..क्या है करनाऽऽऽ

आत्मा की पृच्छना करऽऽऽ/(स्व का सम्यग्ज्ञान करऽऽऽ) जिया रे...(2)...

मैं आत्मा हूँ..चैतन्य स्वरूपीऽऽऽ अनादि से हूँ..अनंत रहूँगाऽऽऽ
निगोद से आया..मोक्ष में जानाऽऽऽ सब किया..मोक्ष ही पानाऽऽऽ
सिद्धि है स्वात्मोपलब्धिऽऽऽ जिया रे...(3)...

अन्य को जानना भी..स्व-ज्ञान हेतुऽऽऽ द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ सभीऽऽऽ
ग्रहणीय-त्यजनीय..हेय-उपादेयऽऽऽ ज्ञान-ज्ञेय..कार्य-कारण आदिऽऽऽ
इ ससे करो आत्म विनिश्चितिऽऽऽ/(इससे करो आत्म विशुद्धिऽऽऽ) जिया रे...(4)...

स्व की जिज्ञासा स्व की ही चर्चाऽऽऽ स्व के ही लेखन व प्रवचनऽऽऽ
स्व की विशुद्धि स्व की ही प्राप्तिऽऽऽ विश्व की महान् उपलब्धिऽऽऽ
अतः 'कनक' स्व-जिज्ञासु बनऽऽऽ/(त्याग परचिन्ता अधम-अधमऽऽऽ) जिया रे...(5)...

आसपुर, दिनांक 30.06.2016, मध्याह्न 2.33

संदर्भ-

अपनी ''सफलता के स्विच'' चालू करना!

कोचिंग इतनी अच्छी तरह काम क्यों करती है, आपको यह दिखाने के लिए एक अभ्यास है, जिसे आप तुरंत-अकेले ही-आजमा सकते हैं।

इस सरल अभ्यास को करने से आपको वे लाभ तो नहीं मिलेंगे, जो व्यक्तिगत कोच के साथ काम करने से मिलेंगे, लेकिन इससे आपको थोड़ी जानकारी मिल जाएगी और अंदाजा हो जाएगा कि आगे क्या है।

अभ्यास में प्रश्न-उत्तर हैं। इनसे आपको यह पता लग जाएगा कि आप जहाँ पहुँचना चाहते हैं, क्या इस वक्त आप उसी पटरी पर हैं। लेकिन इससे आपको एक और लाभ भी होता है। यह आपको आंतरिक रूप से कार्य करने और आगे बढ़ने के लिए भी तैयार करता है।

यह इस तरह काम करता है। एक अच्छा कोच सही प्रश्न पूछकर हमें खुद को देखने और दिशा देने में भी मदद करता है। इसलिए इसमें समझदारी नजर आती है कि अगर हम उसी तरह के प्रश्न खुद से पूछते हैं और अपने जवाबों को सुनते हैं, तो हम कमोबेश वैसा ही ज्ञान हासिल करेंगे। जब आप इस अभ्यास के प्रश्नों का जवाब

देते हैं, तो आपको यही करने में मदद मिलेगी।

लेकिन यह अभ्यास हमें यह भी दिखाता है कि जब हमारे पास किसी बाहरी स्रोत (कोच) से सही संदेश-सही ''प्रेरणा''-होती है, तो हमारे भीतर क्या होता है। इसका संबंध मानव मस्तिष्क के एक संरचनात्मक पहलू से है : मस्तिष्क के महत्वपूर्ण हिस्से-बिजली के स्विच को चलाने की तरह-सचमुच ''चालू करने'' के लिए बनाए गए हैं। इन्हें सफलता की दिशा में हमें प्रेरित करने के लिए बनाया गया है।

यह अभ्यास आपको दिखाएगा, भले ही सीमित तरीके से, (क्योंकि आप इसे खुद कर रहे हैं), जब आप अपनी सफलता के स्विच ''चालू'' कर देते हैं, तो क्या होता है!

खुद के ''संपर्क'' में आना

मैंने पहले जिक्र किया था कि कुछ सालों से मैं एक साप्ताहिक और पाक्षिक कोचिंग पत्र लिख रहा हूँ, जिसे ''पर्सनल लाइफ कोच लेटर'' कहा जाता है। मैं पूरे संसार के हजारों लोगों को ईमेल से इसे भेज रहा हूँ। कुछ समय से मैं इसमें अपने पाठकों को कुछ सवाल लिख रहा हूँ, जिन्हें वे प्रश्न-उत्तर अभ्यास के रूप में खुद से पूछ सके-कुछ उसी तरह के प्रश्न, जिन्हें मैंने यहाँ शामिल किया है। मैं जानता था कि इस तरह का अभ्यास कितना प्रभावी हो सकता है, लेकिन कई आजमाने वाले लोग परिणाम देखकर हैरान रह गए।

मेरे पाठकों ने मुझे लिखकर बताया कि वे मेरे सुझावों का अक्षरशः पालन कर रहे थे; वे मेरे दिए प्रश्नों की सूची प्रिंट कर रहे थे और फिर प्रश्न पढ़कर जवाब दे रहे थे, कई बार जोर से और वे अपने जवाब बहुत सावधानी से सुन रहे थे।

परिणाम यह हुआ कि प्रश्नों के जवाब देने पर उन्होंने खुद से और जहाँ वे जा रहे थे, उससे तुरंत ''संपर्क'' कर लिया। वे ज्यादा एकाग्र, ज्यादा जागरूक, ज्यादा ऊर्जावान् थे-और वे अचानक लक्ष्य तय करने तथा कर्म शुरू करने के लिए तैयार थे। इसके पीछे एक कारण है।

अपने मस्तिष्क में ज्यादा ''सफलता गतिविधि'' उत्पन्न करना

जब आप सही किस्म के प्रश्नों का जवाब देते हैं-जैसे इस अभ्यास में दिए गए हैं-या जब आप किसी पेशेवर कोच के साथ सतत संवाद में संलग्न होते हैं-तो आप

दरअसल अपने मस्तिष्क के अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्रों को प्रेरित कर रहे हैं और एक बेहद सकारात्मक तरीके से मस्तिष्क गतिविधि के स्तर को ऊँचा उठा रहे हैं। ऐसा करने पर जो होता है, वह इस वैज्ञानिक सिद्धांत पर आधारित है कि मस्तिष्क में ऊर्जा कैसे उत्पन्न होती है। यह एक ऐसा सिद्धांत है, जो व्यक्तिगत कोचिंग और इसके इतनी अच्छी तरह काम करने के केंद्र में है।

यह प्रक्रिया इस तरह काम करती है-

आप किसी चीज के बारे में जितना ज्यादा सोचते हैं, आप इस पर जितना ज्यादा ध्यान केंद्रित करते हैं, इसके बारे में जितनी ज्यादा बात करते हैं, इसका जितना ज्यादा अध्ययन करते हैं, इसकी जितनी ज्यादा समीक्षा करते हैं, इस पर जितना ज्यादा कर्म करते हैं, इसे जितना ज्यादा महत्वपूर्ण बनाते हैं, इसे जितना ज्यादा दोहराते हैं, इसकी जितनी ज्यादा आदत डालते हैं-या इसके बारे में प्रश्नों के जितने ज्यादा जवाब देते हैं-आप अपने मस्तिष्क में उतनी ही ज्यादा विद्युत् और रासायनिक गतिविधि उत्पन्न कर लेते हैं। इस तरह आप अपने मस्तिष्क के ''सफलता के स्विचों'' को चालू कर रहे हैं। (नकारात्मकता और निष्क्रियता से वे ''बंद'' हो जाते हैं।)

हर बार जब आप किसी कोचिंग सत्र से गुजरते हैं-और इसके लंबे समय बाद भी-आप इन स्विचों को ''चालू'' स्थिति में ला रहे हैं और अपने मस्तिष्क में रासायनिक व विद्युत् ऊर्जा की मात्रा को बढ़ा रहे हैं। उस ऊर्जा की नई शक्ति आपके नजरिये को समृद्ध करने, आपकी सोच को पैना करने, आपके ध्यान को केंद्रित करने, आपकी दूरदर्शिता को बढ़ाने और आपको कर्म में लगाने में जुट जाती है।

जब आपसे खुद के बारे में खास तरह के प्रश्न पूछे जाते हैं, तो आपका मस्तिष्क सही जवाब देना चाहता है। मस्तिष्क इसी तरह बना है।

सही जवाब खोजने के लिए आपका मस्तिष्क खुद को चालू करने लगता है-रासायनिक और विद्युतीय रूप से। जब आप प्रश्न के बारे में सोचते हैं और फिर जवाब पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो आपके मस्तिष्क के वे हिस्से जागने लगते हैं, जो अक्सर अप्रयुक्त रहते हैं। गतिविधि से रासायनिक/

विद्युत् न्यूरल सर्किट सजीव हो जाते हैं! आपकी पूरी मानसिक क्षमता प्रश्न सुनकर चौकन्नी हो जाती है, अपनी सुषुप्तावस्था से जागती है, ध्यान केंद्रित करती है और चुनौती का सामना करने के लिए उठ खड़ी होती है। (कोई हैरानी नहीं कि जब आपको कोचिंग दी जाती है, तो आप ज्यादा चौकस और सजीव महसूस करते हैं! आप हैं।)

प्रश्न-उत्तर अभ्यास

यहाँ हमारे अभ्यास में प्रश्नों के उत्तर देते वक्त गौर करे कि सचमुच क्या हो रहा है। आप वास्तव में जो कर रहे हैं, वह यह है कि आप उन्हीं स्विचों में से कुछ को ''चालू'' कर रहे हैं और रासायनिक रूप से अपने मस्तिष्क के महत्वपूर्ण न्यूरल पाथवेज को सक्रिय कर रहे हैं।

ये वे स्विच हैं, जो आपकी एकाग्रता, आपके ध्यान, आपके नजरिये और आपके कार्यों को नियंत्रित करते हैं-इसलिए आप अपने मस्तिष्क की ज्यादा वृहद् रासायनिक और विद्युतीय ऊर्जा से अपने पक्ष में काम करा रहे हैं! जब आपका मस्तिष्क सक्रिय और सजीव होता है-तो आप भी होते हैं! (जब कोई प्रशिक्षित, पेशेवर कोच आपके साथ काम करता है, तो आप इन स्विचों में से दस-या सौ को चालू कर लेंगे! कल्पना करे कि क्या हो सकता है, अगर आप सही कोच के साथ काम कर रहे हों-और आप सभी सही स्विच चालू कर दें!) आप वास्तव में कौन है और क्या चाहते हैं? (डॉ. शैड हेल्म्स टेलर)

मेरे अनंत गुणों का ध्यान : विभिन्न नय से

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., मन रे तू काहे न धीर धरे.....)

जिया रे! तू स्व-रूप ध्यान करो।
तू तो चेतन अनंत गुणधारीऽऽऽ स्वयंभू स्वयंपूर्ण रे।। (ध्रुव)

मैं हूँ चैतन्य जीव द्रव्यऽऽऽ मौलिक स्वतंत्र अविभागीऽऽऽ
अन्य से भिन्न, स्वयं में पूर्णऽऽऽ अतः मैं एक द्रव्य अविनाशीऽऽऽ
द्रव्य स्वतंत्र गुणधारी! जिया रे!...(1)

मेरे मध्य में अनंत गुणगणऽऽऽ ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादिऽऽऽ

चैतन्य रत्नत्रय दशधर्म आदिऽऽऽ अतः मैं अस्तित्ववान् द्रव्यऽऽऽ
मैं अनंत अस्तित्ववान्ऽऽऽ/अतः मैं हूँ पूर्ण स्वरूपीऽऽऽ! जिया रे!...(2)

अन्य द्रव्य सभी मुझसे परे हैंऽऽऽ राग द्वेष मोहादि भी परऽऽऽ
तन मन इन्द्रिय मुझसे परे हैंऽऽऽ पर चतुष्टय भी मुझसे परऽऽऽ
अतः मैं हूँ नास्तित्ववान्ऽऽऽ/अतः मैं हूँ शून्य स्वरूपीऽऽऽ! जिया रे!...(3)

मेरा स्वरूप का कथन युगपत्ऽऽऽ करना नहीं संभव कदापिऽऽऽ
अतः मैं अव्यक्तव्य स्वरूप हूँऽऽऽ अनुभवगम्य अविभागीऽऽऽ
शब्दातीत हूँ अनंत गुणधारीऽऽऽ! जिया रे!...(4)

स्वयंभू सनातन अतः मैं नित्य हूँऽऽऽ गुण व द्रव्यदृष्टि सेऽऽऽ
उत्पाद व्यय से अनित्य हूँऽऽऽ पर्याय दृष्टिकोण सेऽऽऽ
द्वैत-अद्वैत भी हूँ मैंऽऽऽ! जिया रे!...(5)

मैं हूँ मेरा ईश्वर तथा अनीश्वरऽऽऽ कर्त्ता-धर्त्ता व भोक्ताऽऽऽ
सर्वगत हूँ मैं असर्वगत हूँऽऽऽ ज्ञान ज्ञेय सर्वेसर्वाऽऽऽ
अद्वितीय अनुपम हूँ मैंऽऽऽ! जिया रे!...(6)

कर्म के कारण मेरे सभी गुणऽऽऽ मुझमें ही है सुप्त व गुप्तऽऽऽ
कर्मनाश से गुण प्राप्त करनाऽऽऽ मेरा है अंतिम परम लक्ष्यऽऽऽ
जिया रे! तू स्व-रूप ध्यान करो...(7)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 23.06.2016, मध्याह्न 2.10
(यह कविता प्रवचनसार व ध्यानसूत्र से भी प्रभावित है)

जैन धर्म की सर्वोच्च विशेषता

भव्य ही बनते हैं भगवान्

(चाल : सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालों.....)

सुनो हे! शिष्य/(भव्य) तुम्हें बताऊँ...जैन धर्म की अति विशेषता।
जीव बनते जिनेन्द्र देव...यथाहि बीज ही बनता वृक्ष।। (1)

भव्य जीव ही बनते भगवान्...यथा अशुद्ध सोना बनता शुद्ध।
द्रव्य क्षेत्र काल भाव पाकर...भव्य ही बनते अरिहंत सिद्ध।। (2)

हर जीव में होती अनंत शक्ति...अनादि कर्मबंध से सुप्त वे शक्ति।
यथा एटम बम में होती शक्ति...विस्फोट से होती शक्ति जागृति।। (3)

तथाहि कर्म बंधन के क्षय से...भव्य की शक्तियाँ होती जागृति।
यथाहि बिगबैंग के कारण से...सिंगलेरेटी से हुई विश्व उत्पत्ति।। (4)

अणु से भी छोटा सिंगलेरेटी से...यदि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होना संभव।
तब भव्य जीव कर्मक्षय द्वारा...भगवान् बनना क्यों न हो संभव।। (5)

$E=mc^2$ के कारण से यदि...भौतिक वस्तु से उत्पन्न होती प्रचुर शक्ति।
तब भव्य जीव आत्म विशुद्धि द्वारा...क्यों असंभव प्रगट करने की स्व-शक्ति।। (6)

जैन धर्मानुसार वे होते भगवान्...जो होते राग द्वेष मोह से मुक्त।
ईर्ष्या तृष्णा आसक्ति अज्ञान मुक्त...काम क्रोध मान माया से मुक्त।। (7)

घातीकर्म नाश से बनते अरिहंत...जो होते अनंत ज्ञान दर्श सुख युक्त।
अनंत वीर्य सह दिव्य देह युक्त...क्षुधा तृषादि अठारह दोष विमुक्त।। (8)

दिव्य धर्मसभा के मध्य में वे...सर्व भाषा में करते उपदेश।
मनुष्य पशु-पक्षी देव भी सुनते...जिनकी आत्मिक दृष्टि होती सम्यक्।। (9)

विश्व कल्याण हेतु वे देते उपदेश...अनेकांतमय स्याद्वाद वाणी से।
वस्तु स्वरूप से लेकर आत्म स्वरूप...अणु से विश्व प्रतिविश्व।। (10)

अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य...अपरिग्रह तथा क्षमादि दश धर्म।
आत्मा को परमात्मा बनाने के सूत्र...रत्नत्रयमय आध्यात्मिक धर्म।। (11)

अघाती भी नाश से अरिहंत बनते...शुद्ध-बुद्धमय अमूर्तिक सिद्ध।
द्रव्य-भाव व नोकर्म से रहित...सच्चिदानंदमय आनंद-कंद।। (12)

इसके अनंतर न होते जन्म-मरण...तन-मन-इंद्रिय व भौतिक प्राण।
आधि-व्याधि सांसारिक सुख-दुःख रहित...अनंत आध्यात्मिक गुण सम्पन्न।। (13)

यह ही जीवों की परम विकास दशा...शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय अवस्था।
समस्त धर्म साधक इसके हेतु...'कनक' भी करे साधना इस हेतु।। (14)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 21.06.2016, रात्रि 9.15

संदर्भ-

सिद्धा-नुद्धूत-कर्म-प्रकृति-समुदयान् साधितात्मस्वभावान्,
वन्दे सिद्धि-प्रसिद्धयै तदनुपम-गुण-प्रग्रहाकृष्टि-तुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः, प्रगुण-गुण-गणोच्छादि-दोषापहाराद्,
योग्योपादान-युक्त्या दृषद्, इह यथा हेम-भावोपलब्धि।।1।।

भावार्थ-जिस प्रकार स्वर्ण पाषाण में शुद्ध स्वर्ण पर्याय प्राप्त करने की योग्यता है किन्तु किट्ट-कालिमा आदि से युक्त होने से वह शुद्ध पर्याय प्रकट नहीं हो पाती। जब बुद्धिमान व्यक्ति 16 ताव देकर उसे अग्नि से संतप्त कर किट्ट-कालिमा को दूर कर देता है तब स्वर्ण पाषाण अपने वास्तविक रूप को प्राप्त हो शुद्धता से युक्त स्वर्ण पर्याय को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार ''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' शुद्धनय से प्रत्येक भव्यात्मा सिद्ध भगवन्तों के समान शुद्ध हैं। प्रत्येक भव्यात्मा सिद्ध अवस्था/सिद्ध पर्याय को प्राप्त करने की योग्यता रखता है, परन्तु ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से आवृत्त हुआ, कर्म-कीट्टिका से मलीन होता हुआ शुद्ध मुक्त पर्याय को प्रकट नहीं कर पाता है। जब भव्यात्मा ''12 तप और 4 आराधना रूप 16 ताव'' रूप तपश्चरणादि करणों/निमित्तों की संयोजना करता है तब विकारी भाव नष्ट होते ही कर्म-कीट से रहित हो आत्मा सिद्ध/मुक्त पर्याय को प्राप्त होता है। जिन भव्य जीवों ने अष्ट कर्मों का क्षय कर दिया है आत्मा के सत्य स्वरूप को प्राप्त कर लिया है वे सिद्ध कहलाते हैं।

यहाँ स्तुतिकर्त्ता आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सिद्ध पद की प्राप्ति के लिए, उनके गुणों का स्मरण करते हुए, पूर्ण विशुद्ध अवस्था को प्राप्त सिद्ध भगवन्तों की वंदना की है। यहाँ स्तुतिकर्त्ता आचार्य ने ''गुणप्रग्रहाकृष्टितुष्ट'' पद दिया यह अपने आप में विचारणीय है-जैसे कूप/बावड़ी आदि में गिरी वस्तु को रस्सी के माध्यम से ऊपर खींचा जाता है, वैसे ही संसार रूपी गहन कूप में गिरे भव्य जीवों को सिद्ध परमेष्ठियों के श्रेष्ठ/महानतम गुणों में की जाने वाली भक्ति रूपी रस्सी ही तिराने में/ऊपर लाने में समर्थ हो सकती है।

छिन्दन् शेषा-नशेषान्-निगल-बल-कलीं-स्तैरनन्त-स्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्रयावगाहागुरु-लघुक-गुणैः क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यै-श्चान्य-व्यपोह-प्रवण-विषय-संप्राप्ति-लब्धि-प्रभावै-
रूर्ध्व-व्रज्या स्वभावात्, समय-मुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्रये।।5।।

भावार्थ-अरहंत पद की प्राप्ति पूर्वक ही सिद्ध अवस्था होती है अतः आचार्य देव सिद्ध भगवान् की क्रमिक उन्नत अवस्था का वर्णन/स्तवन करते हुए स्तुति करते हैं-वे अरहंत भगवान् बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान के चरम समय तक 63 प्रकृतियों-घातिया कर्मों की 47 नामकर्म की 13 और आयु कर्म की 3 प्रकृतियों को क्षय कर चुकते हैं। फिर भी अघातिया कर्मों की 85 प्रकृतियों की सत्ता बनी रहती हैं। उनमें आयु कर्म बेड़ी के समान कष्टप्रद है संसार में रोकने वाला है। चौदहवें अयोग केवली गुणस्थान में व्युपरतक्रियानिवर्ती शुक्लध्यान रूपी तीक्ष्ण तलवार के बल से अयोगी जिन उपान्त्य समय में 72 और अंत समय में 13 प्रकृतियों क्षय कर कर्मों की सत्ता को जड़ से उखाड़ देते हैं। वे परमात्मा नामकर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, आयु कर्म के क्षय से अवगाहनत्व, गोत्र कर्म के अभाव से अगुरुलघुत्व और वेदनीय कर्म के नाश से अव्याबाधत्व इन चार गुणों से और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अंतराय के क्षय से प्रकट हुए क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक वीर्य/अनंत चतुष्टय इन आठ गुणों से शोभायमान होते हैं। समस्त घाति-अघाति कर्मों का क्षय होते-होते ही ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने से एक समय में ही 7 राजू ऊपर लोकाग्र पर स्थित तनुवातवलय में 45 लाख योजन सिद्धालय में जा सदा के लिए विराजमान हो जाते हैं।

विशेष-सिद्धक्षेत्र पर समस्त सिद्धपरमेष्ठियों के शिर लोक से स्पृष्ट रहते हैं और शेष भाग अपनी अवगाहना के अनुसार नीचे रहता है।

स्वतंत्र-मौलिक बनने की मेरी भावना

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू स्वयं मौलिक बनऽऽऽ

नकलची छोड़ो...आदर्श बनोऽऽऽ स्व-स्वरूपमय तू बनऽऽऽ...(ध्रुव)...

तू स्वयंभू स्वतंत्र स्वयंपूर्णऽऽऽ अद्वितीय-मौलिक-अविनाशीऽऽऽ

स्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव सहितऽऽऽ अनंत गुणगणधारीऽऽऽ

(तू) सच्चिदानंद अविकारीऽऽऽ जिया...(1)...

अनादि काल से स्वभाव त्याग सेऽऽऽ तू बना दीन-हीन-भिखारीऽऽऽ

चौरासी लक्ष योनि चतुर्गति मध्येऽऽऽ तू बना नकलची संसारीऽऽऽ
पाया अनंत दुःख भारीऽऽऽ जिया...(2)...

नट-नटी आदि बनते हैं नकलचीऽऽऽ तीर्थंकर न बनते नकलचीऽऽऽ
बहुरूपिया वेश धरते विदूषकऽऽऽ तथा न बनते (जो) श्रमण ज्ञानी/(ध्यानी)ऽऽऽ
तू तो आदर्श अनुगामीऽऽऽ जिया...(3)...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि जो चाहतेऽऽऽ वे करते अन्य के चापलूसीऽऽऽ
वैश्या विदूषक सम व्यवहार करतेऽऽऽ अन्य को फुसलाने के अभिलाषीऽऽऽ
स्वयं को तू करो संतोषऽऽऽ जिया...(4)...

सरल-सहज-समता-शांति सेऽऽऽ करो तू ध्यान व अध्ययनऽऽऽ
निस्पृह निराडम्बर वीतरागी बनऽऽऽ करो आत्मा का शोध-बोध-ज्ञानऽऽऽ
'कनक' शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽऽ जिया...(5)...

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 19.06.2016, मध्याह्न 1.55 (केशलोंच के दिन)

परमार्थ-I

'मैं'/(स्व) की उपलब्धि ही जैन धर्म रहस्य का सार

स्व-उपलब्धि ही मोक्ष, अन्यथा है संसार

(मोक्ष के प्रमुख कारण व संसार भ्रमण के प्रमुख कारण)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे.....)

जिया रे! तू स्व-उपलब्धि करोऽऽऽ
स्व-उपलब्धि ही परम उपलब्धिऽऽऽ अन्य सब अनित्य संसारऽऽऽ...(ध्रुव)...

स्व-विश्वास चाहिए..स्व-उपलब्धि हेतुऽऽऽ 'मैं' हूँ सच्चिदानंदमयऽऽऽ
स्व-ज्ञान चाहिए..आत्मविश्वास युक्तऽऽऽ 'मैं' हूँ अनंत ज्ञान दर्शमयऽऽऽ
स्व-शुद्धात्म अनुभव करोऽऽऽ...(1)...

इसी हेतु ही ध्यान-अध्ययन करोऽऽऽ करो तप-त्याग-संयमऽऽऽ
व्रत-नियम-अध्यापन-प्रवचन करोऽऽऽ करो धर्म प्रभावना व लेखनऽऽऽ
आत्म प्रभावना हेतु करोऽऽऽ...(2)...

स्व-उपलब्धि लक्ष्य के अतिरिक्तऽऽऽ सभी धार्मिक क्रिया व्यर्थऽऽऽ
व्रत-नियम-अध्ययन-अध्यापनऽऽऽ प्रवचन-लेखन भी हैं व्यर्थऽऽऽ
आत्मोपलब्धि ही परमार्थऽऽऽ...(3)...

भव्यसेन मुनि आत्म सम्वेदन बिनऽऽऽ आगमज्ञान से न पाया मोक्षऽऽऽ
शिवभूति मुनि आत्म सम्वेदन सेऽऽऽ 'मा तुस मा रुस' से पाये मोक्षऽऽऽ
अतः रोष-तोष को त्यजऽऽऽ...(4)...

रोष-तोष कारक भाव-व्यवहारऽऽऽ करो हे! त्याग नवकोटि सेऽऽऽ
समता-शांति-निस्पृह भाव सेऽऽऽ स्व-आत्मा का शोध-बोध करोऽऽऽ
संकल्प-विकल्प/(संक्लेश) परिहारोऽऽऽ...(5)...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागकरऽऽऽ स्व (मैं) का ही करो ध्यान-अध्ययनऽऽऽ
एकांत मौन व निराडम्बर बनकरऽऽऽ स्वयं में ही स्वयं हो लीनऽऽऽ
सच्चिदानंद पूर्ण बनऽऽऽ...(6)...

इसके अतिरिक्त सभी उपलब्धियाँऽऽऽ पाया है अनंतानंत बारऽऽऽ
उससे अनंतानंत दुःखों को भोगाऽऽऽ अतः रहो इनसे अति दूरऽऽऽ
'कनक' शुद्धात्मा तव संसारऽऽऽ/(स्वात्मोपलब्धि ही आध्यात्म सारऽऽऽ)...(7)...

परमार्थ-II

स्व-शुद्धात्मा अध्ययन से मोक्ष

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे.....)
जिया रे! तू स्व-अध्ययन करोऽऽऽ
स्व-अध्ययन ही है स्वाध्यायऽऽऽ अन्यथा तोता रटन्तऽऽऽ...(ध्रुव)...

स्व-स्वरूप..परिज्ञान हेतुऽऽऽ पर-स्वरूप..तू जानऽऽऽ
द्रव्य-तत्त्व-पदार्थों को जानऽऽऽ जिससे करो भेद-विज्ञानऽऽऽ
इससे होता आत्मज्ञानऽऽऽ...(1)...

आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र द्वाराऽऽऽ आत्मा का करो अनुभवऽऽऽ
अनुभव ही यथार्थ स्वाध्यायऽऽऽ स्वाध्याय ही परम तपऽऽऽ

स्व-सम्वेदन ही परम तपऽऽऽ...(2)...

स्व-सम्वेदन से होता परिज्ञानऽऽऽ 'मैं' हूं सच्चिदानंदमयऽऽऽ
स्वयंभू स्वयंपूर्ण अनंत गुणधामऽऽऽ ज्ञान दर्शन सुख वीर्य पूर्णऽऽऽ
स्वाध्याय रूप यह पूर्णऽऽऽ...(3)...

स्व-अनुभव बिन आगम अध्ययन भीऽऽऽ नहीं होता यथार्थ स्वाध्यायऽऽऽ
(यथा) स्व-अनुभव बिन कंप्यूटर कामऽऽऽ नहीं होता यथार्थ स्वाध्यायऽऽऽ
अभव्य के आगम ज्ञान समऽऽऽ...(4)...

अभव्य सेन मुनि का आगम अध्ययनऽऽऽ नहीं था यथार्थ स्वाध्यायऽऽऽ
/(नहीं बना मोक्ष हेतु कारणऽऽऽ)
शिवभूति मुनि का आत्मानुभव ज्ञानऽऽऽ बना था मोक्ष हेतु कारणऽऽऽ
/(शुद्धात्मा को मिले परिनिर्वाणऽऽऽ)...(5)...

शब्द से लेकर भौतिक ग्रंथ तोऽऽऽ होते हैं जड़ स्वभावमयऽऽऽ
ग्रंथ पढ़ना व याद रखना तोऽऽऽ होता है क्षयोपशममयऽऽऽ
शुद्धात्मा को मिले है मोक्षऽऽऽ/(अतः शुद्धात्मा करो वरणऽऽऽ)...(6)...

शुद्धात्मा से भिन्न विभाव त्यागोऽऽऽ संकल्प-विकल्प-संक्लेशऽऽऽ
ख्याति पूजा लाभ अहंकार-ममकारऽऽऽ त्यागकर बनो आकिञ्चन्यऽऽऽ
'कनक' स्वयं/(मैं) में करो रमणऽऽऽ...(7)...

परमार्थ-III

सामाजिक से लेकर मानसिक सत्य परे हूँ 'मैं' शुद्धात्मा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : जय हनुमान.....)

सत्य के विभिन्न स्वरूप को जानो, लौकिक से लेकर आध्यात्मिक मानो।
उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सत्य ये जानो, स्व-शुद्धात्मा ही स्व-परम सत्य मानो।। (स्थायी)

सामाजिक-नैतिक-पारिवारिक सत्य, संगठन व राष्ट्रीय मान्य भी सत्य।
अंतर्राष्ट्रीय व मानसिक भी सत्य, स्व-शुद्धात्मा ही स्व-परम सत्य।।

उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते ये सत्य, द्रव्य-क्षेत्र-काल सापेक्ष है सत्य।

स्व-शुद्धात्मा ही है स्व-परम सत्य, इसी की प्राप्ति हेतु करूँ प्रयत्न।। (1)

स्व-शुद्धात्मा से भिन्न सभी ही सत्य, स्वयं के लिए नहीं है परम सत्य।
सामाजिक से लेकर अंतर्राष्ट्रीय सत्य, साधारण मानव द्वारा मान्य सत्य।।

मानसिक सत्य भी नहीं परम होता, मन से परे शुद्धात्मा स्वरूप होता।
मानसिक सत्य होता है क्षायोपशमिक, शुद्धात्म स्वरूप होता है क्षायिक।। (2)

सच्चिदानंद है शुद्धात्मा स्वरूप, अजर-अमरमय शाश्वत रूप।
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य रूप, स्वतंत्र स्वयंपूर्ण अखण्ड रूप।।

स्व-शुद्धात्मा प्राप्ति ही मेरा परम लक्ष्य, इसी हेतु ही करूँ सदा प्रयत्न।
लौकिक व्यवहार से भले करूँ 'मैं' मान्य, श्रद्धा व प्रज्ञा से न करूँ मान्य।। (3)

बादल से भले आकाश दिखे विभिन्न, तथापि आकाश न होता बादलमय।
लौकिक व्यवहार से मेरे रूप विभिन्न, तथापि शुद्ध रूप मम होता चैतन्य।।

अतएव कहा गया है आगम में, ''अलौकिक वृत्ति भवति मुनिनाम्''।
यथायोग्य 'मैं' करूँ ऐसी प्रवृत्ति, 'कनकनन्दी' चाहे आत्मोपलब्धि।। (4)

भाव विशुद्धि ही परमोधर्म

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

भाव विशुद्धि है (ही) परम धरम, भाव विशुद्धि हेतु (ही) धरम पालन।
भाव विशुद्धि बिन धार्मिक कर्म, बीज बिना खेती समान कर्म।। (धृ.)

वस्तु स्वभावमय होता धरम, वस्तु विभावमय होता अधर्म।
शुद्ध-बुद्धमय ज्ञान-आनन्द, समता-शांति ही जीव का धर्म।।

आनंदमय होता जीव स्वभावतः, अतएव हर जीव चाहे आनंद।
स्वभाव होने से जीव का धर्म आनंद, शुद्ध बुद्धमय व ज्ञानानंद।। (1)

यह अवस्था ही है मोक्ष-अवस्था, जीव की परम उच्च शुद्ध अवस्था।
जन्म-जरा-मृत्यु रिक्त अवस्था, सच्चिदानंदमय ध्रुव-अवस्था।।

इसे प्राप्ति हेतु जो होते कर्म, उसे भी कहते (है) व्यवहार धर्म।
दान दया सेवा व परोपकार, सादा जीवन व उच्च विचार।। (2)

पूजा-प्रार्थना व तीर्थ वंदना, तप-त्याग तथा मौन साधना।
ध्यान-अध्ययन व संयम शौच, यह सब भी (है) धर्म की साधना।।

भाव विशुद्धि बिन धर्म न होता, इसी से युक्त कर्म-धर्म भी होता।
अज्ञानी मोही जीव यह नहीं जानते, संकीर्ण कट्टरता से धर्म करते।। (3)

जिससे धर्म में/(से) होते अनेक कुकर्म, भेदभाव पूर्ण अयोग्य कर्म।
भाव विशुद्धि से यह न संभव, 'कनक' चाहे आत्म विशुद्धि धर्म।। (4)

(व्यवहार-निश्चय सम्यग्दर्शन संबंधी शोधपूर्ण कविता)

देव-शास्त्र-गुरु के माध्यम से स्व-शुद्धात्मा का श्रद्धान है : सम्यग्दर्शन

(वर्तमान में सच्चे गुरु से ही तीनों की होती है श्रद्धा-प्रज्ञा)

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा.....)

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का जो, श्रद्धान करते हैं भव्य प्राणी।
वे होते हैं सम्यग्दृष्टि, कहती है श्री जिनवाणी।। (स्थायी)

देव की वर्तमान पर्याय ही, मेरी है भावी पर्याय।
मेरी पर्याय अभी तो अशुद्ध, देव की शुद्ध पर्याय।।

तप त्याग ध्यान अध्ययन से, मुझे भी बनना है देव/(शुद्ध)।
ऐसी जब होती है श्रद्धा/(आत्मविश्वास), तब होता है सम्यक्त्व।। (1)

स्वयं के द्रव्य-गुण पर्यायों को, जानता है जिनवाणी।
मैं हूँ जीव द्रव्य मुझमें चैतन्य गुण, अशुद्ध हूँ (पर्याय) मैं अनादि से।।

जिनवाणी से जानता है द्रव्य, तत्त्व व नव पदार्थों को।
स्वयं में भी उन द्रव्यादि को, घटित करता है स्वयं को।। (2)

स्वयं में भी होते हैं आस्रव बंध, संवर निर्जरा व मोक्ष।
पुण्य-पाप भी स्वयं में होते, ऐसी श्रद्धा से होता सम्यक्त्व।।

देव स्वरूप होता है मोक्ष, शास्त्र है मोक्ष कथक।
गुरु होते हैं मोक्ष पथिक, तीनों के श्रद्धान से सम्यक्त्व।। (3)

मोक्ष पथिक है चारित्रमय, जो है रत्नत्रय आराधक।
मोक्षमार्ग के जीवन्त रूप, गुरु तरण-तारण जहाज।।

पंचमकाल में तो सच्चा गुरु ही, तीनों रत्न के हैं प्रतिनिधि।
देव को बताने वाले गुरु होते, पढ़ाते हैं वे श्री जिनवाणी/(श्रुतनिधि)।। (4)

इसी हेतु ही (सच्चे) देवशास्त्र गुरु का, श्रद्धान होता है सम्यग्दर्शन।
तीनों के माध्यम से स्व-श्रद्धान से होता है सम्यग्दर्शन।।

देवशास्त्र गुरु रूपी निमित्त से, स्व का जब होता है श्रद्धान।
तब होता है सम्यग्दर्शन, दर्पण से यथा स्व-बिम्ब दर्शन।। (5)

अंधा यथा दर्पण से भी न देख पाता है स्व-प्रतिबिंब।
तथाहि अभव्य व घोर मिथ्यादृष्टि को, नहीं होता है सम्यक्त्व।।

भद्र मिथ्यादृष्टि भी यदि करता है भक्ति तीनों की।
वह भी सांसारिक सुख भोगे, (ऐसी) शक्ति निरतिशय पुण्य की।। (6)

सम्यग्दृष्टि तो सातिशय पुण्य से, भोगता है सांसारिक सुख।
साधु बनकर पाये मोक्ष सुख, 'कनक' का लक्ष्य आत्म सुख।।

यथा दीपक के सम्पर्क से, बुझा हुआ दीपक होता प्रज्ज्वलित।
तथाहि देवशास्त्र गुरु से, सम्यक्त्व होता प्रगट।। (7)

चुम्बक के घर्षण से यथा, लोहा बनता है चुम्बक।
तथाहि देवशास्त्र गुरु की भक्ति/(श्रद्धा) से भव्य को होता सम्यक्त्व।।

अग्नि से (यथा) ईंधन अग्नि बनती, तथाहि निकट भव्य।
देवशास्त्र गुरु की श्रद्धा से, स्वयं में प्रगट करता सम्यक्त्व।। (8)

देवशास्त्र गुरु के माध्यम से, स्वगुण में ही हुआ सम्यक्त्व।
स्व-श्रद्धा प्रज्ञा के कारण, मिथ्या श्रद्धा हो गई सम्यक्त्व।।

अतएव हे! भव्य जीव, स्व-विभाव को करो परिवर्तन।
देवशास्त्र गुरु निमित्त से, पाओ तुम सम्यग्दर्शन।। (9)

देवशास्त्र गुरु रूपी निमित्त से, न करो हे! राग द्वेष मोह।
राग द्वेष मोह क्षय करके, पाओ हे! आध्यात्मिक सुख।।

(6) द्रव्य सप्त तत्त्व नव पदार्थ व देवशास्त्र गुरु श्रद्धान।
होता है व्यवहार सम्यग्दर्शन, स्व-शुद्धात्म रूचि निश्चय श्रद्धान।। (10)

(व्यवहार व निश्चय सम्यक्त्व का समन्वय प्रायः शिष्य वर्ग नहीं कर पाते हैं। उनको समझाने के लिए यह कविता बनी।)

लौकिक-आत्मविश्वास व आध्यात्मिक-आत्मविश्वास : स्वरूप व फल

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

आध्यात्मिक ही है परम सत्य, अन्य सभी लौकिक व्यवहार (है)।
शुद्ध-बुद्ध-परमात्मा ही स्व-आत्मतत्त्व, अन्य सभी होते पर हैं।। (1)

शरीर मन व इन्द्रिय सत्ता, संपत्ति सभी होते स्व से पर।
शरीर आदि को ही 'मैं' मानना, यह तो मोह या लौकिक व्यवहार।। (2)

लौकिक कार्य हेतु जो विश्वास होता, वह लौकिक आत्मविश्वास है।
लौकिक व्यवहार आत्मविश्वास ही, नहीं परम आत्मविश्वास है।। (3)

इसी में लौकिक कामना-इच्छा, होती जो संसार कारक है।
इसी से होता है कर्मबंध, न होते मुक्ति के कारक है।। (4)

लौकिक पढ़ाई विवाह व्यापार, राजनीति नौकरी आदि हेतु।
होता जो विश्वास (वह) लौकिक विश्वास, नहीं होता है मोक्ष हेतु।। (5)

स्व-शुद्धात्मा का विश्वास ही, यथार्थ में आत्मविश्वास है।
जिससे होता है सम्यग्ज्ञान, चारित्र भी होता सम्यक् है।। (6)

स्व-आत्मा में निहित अनंत ज्ञान, दर्शन-सुख-वीर्य का होता श्रद्धान।
वही यथार्थ से आत्मविश्वास (श्रद्धान) जो कि मोक्ष का मूल कारण।। (7)

आध्यात्मिक आत्मविश्वास का अध्ययन, नहीं होता स्कूल-कॉलेजों से।
नहीं संविधान-कानून-व्यापार, राजनीति या भौतिक विज्ञान में।। (8)

इसका अध्ययन होता आगम में/(से), आध्यात्मिक गुरु के माध्यम से।
यह अध्ययन ही स्व-का अध्ययन, जिसका संबंध/(उद्गम) होता है आत्मा से।। (9)

यह ही परम आध्यात्मिक विद्या, जिससे मिलती परम मुक्ति।
इसलिए ही 'कनकनन्दी' की, आत्मविश्वास में अधिक रूचि।। (10)

स्व-शुद्धात्म श्रद्धान से होता है धर्म का शुभारंभ

(नैतिकता से परे भी है आध्यात्मिकता)

(नैतिकता बिना धर्म नहीं व केवल नैतिकता ही धर्म नहीं)

(चाल : शत-शत वंदन....., आत्मशक्ति.....)

भोगभूमि के तिर्यंच मनुष्य भी, नहीं भोगते हैं सप्त-व्यसन।
क्रोध-मान-माया-लोभ भी होता (है) मंद, बाह्य पंच पाप भी न करते सेवन।। (1)

भले वे होते हैं सम्यग्दृष्टि अथवा, मिथ्यादृष्टि या अभव्य।
सभी ही मानव पशु-पक्षी भी, पालन करते हैं उक्त कर्त्तव्य।। (2)

मिथ्यादृष्टि जीव जो होते यथायोग्य, उपरोक्त गुणों से सहित भी होते।
देव दर्शन भी करते वे देव, तथापि वे न होते सच्चे धार्मिक।। (3)

इसी से यह सिद्ध होता (है) उक्त सभी, कर्त्तव्य होते हैं नैतिक गुण।
व्यक्ति से लेकर विश्व मानवों को, पालनीय उपरोक्त कर्त्तव्य गण।। (4)

तन-मन-इन्द्रिय स्वास्थ्य के लिए, तथाहि सामाजिक सुव्यवस्था हेतु।
हर मानवों को प्राकृतिक रूप से, सेवनीय उक्त गुण सभ्यता हेतु।। (5)

यथा मछली तैरती (है) पानी में, अंतरिक्ष में उडते (हैं) विहंगम।
तथाहि सभ्य नैतिक मानवों को, पालनीय उक्त कर्त्तव्य गण।। (6)

निरतिशय होता पुण्य बंध किन्तु, न होता सातिशय पुण्य बंध।
सांसारिक तुच्छ भोग मिले किन्तु, नहीं मिलता है मोक्ष सुख।। (7)

इसी से आगे धर्म होता प्रारंभ, जो होता है आध्यात्ममय।
आत्मविश्वास व आत्मज्ञान सहित, आत्म परिणाम विशुद्धमय।। (8)

आत्मविश्वास में होता है श्रद्धान, मैं हूँ सच्चिदानंद अमूर्तमय।
तन-मन-अक्ष राग द्वेषादि रहित, मैं शुद्ध-बुद्ध व आनंदमय।। (9)

तन-मनादि मेरे नहीं शुद्ध रूप, ये सभी तो विकारी कर्मज रूप।

इसी से परे होने के लिए होता है, लक्ष्य-आचरण भी होता तदनुरूप।। (10)

ऐसा श्रद्धान सहित जब पालन करता, उपरोक्त सभी नैतिक कर्त्तव्य।
तब ही बनते उक्त सभी कर्त्तव्य, धार्मिकमय आध्यात्मिक कर्त्तव्य।। (11)

उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विशुद्धि होने से, संसार शरीर से होता विरक्त।
ध्यान-अध्ययन व आत्म विशुद्धि से, अंत में पाता है कर्मों से मुक्त।। (12)

आगम में इसे कहते गुणस्थान आरोहण, चतुर्थ गुणस्थान से धर्म प्रारंभ।
स्व-शुद्धआत्मा की श्रद्धा व प्रज्ञा से, चतुर्थ गुणस्थान का होता प्रारंभ।। (13)

इससे अनेक शिक्षाएँ मिलती, जो सेवन करते सप्त व्यसन आदि।
वे सामान्य भद्र नैतिक भी न होते, कहाँ से होंगे वे धार्मिक आदि।। (14)

आत्म विशुद्धि बिन उक्त नैतिक गुणों से भी, कोई न होता है सच्चा धार्मिक।
धार्मिक होने हेतु आत्म विशुद्धि युक्त, सेवनीय उक्त नैतिक कर्त्तव्य।। (15)

नैतिक से भी श्रेष्ठ है आध्यात्मिक धर्म, जो नैतिक आत्म विशुद्धि संयुक्त।
नैतिक विहिन न होता है धर्म, नैतिकता न होती संपूर्ण धर्म।। (16)

नैतिक गुण बिन कोई न होता सभ्य/(सही) मानव, आत्म विशुद्धि बिना न होता धार्मिक।
दोनों से युक्त हो सभी मानव इसी हेतु, 'कनक' ने बनाया (यह) (पावन) शोध काव्य।। (17)

आध्यात्म ही है परम स्वावलंबन, स्वाधीन, अनुशासन, स्वसुसमय, स्वामी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की धड़कन.....)

आध्यात्म ही है परम स्वावलंबन, अनुशासन व सुस्वसमय।
इसी से भिन्न लौकिक स्वावलंबन, व्यवहारमय व स्वार्थपूर्ण।। (ध्रुव)

स्व-अवलंबन है आत्मा अवलंबन, जिसमें अन्य का नहीं सहारा।
द्रव्य-भाव नोकर्म सहित तन-मन इन्द्रियों का भी नहीं सहारा।।

जानने देखने सुख-वैभव हेतु भी, आत्मा के अतिरिक्त नहीं सहारा।
भोजन-पानी-औषधि अस्त्र-शस्त्र, धन-जन परे आत्मा का ही सहारा।। (1)

इसी अवस्था में होते हैं अनंत ज्ञान, दर्शन सुख वीर्य आदि अनंत गुण।

यह अवस्था ही जीव की परमावस्था, सत्य-शिव-सुंदर आनंदमय।।
इसी अवस्था में होता परमानुशासन, जो स्व के द्वारा ही स्व में होता।
भय-आशा-काम-क्रोधादि रहित, अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रभुत्व युक्त होता।। (2)

यह अवस्था ही परमसुसमयमय, व्यवहारसमय से यह परे होता।
संस्था-समाज या कानूनी व्यवस्था, परे जैविक-भौतिक घड़ी से भी परे होता।।
इस अवस्था में ही जीव स्वयं का, स्वयं ही होता है पूर्णतः स्वामी।
अन्य सभी अवस्था में जीव नहीं, होता है पूर्णतः स्वयं का भी स्वामी।। (3)

अन्य अवस्था में कोई भी जीव नहीं, होता है पूर्णतः उक्त गुण युक्त।
क्षुद्र जीव से लेकर राजा-महाराजा, चक्री से लेकर तानाशाही तक।।
किसी न किसी दृष्टि से वे होते हैं, परावलंबी परानुशासी आदि।
तन-मन-इन्द्रिय व काम-क्रोधादि के, वे भी होते है वशवर्ती।। (4)

इसलिए तो चक्रवर्ती भी इसी, अवस्था के लिए बनते हैं वैरागी।
आत्म साधना के बल पर क्रमशः, बनते हैं वे पूर्ण स्वावलंबी।।
संसारी जीव जो स्वयं को मानते हैं, पूर्ण स्वावलंबी व पूर्ण अनुशासी।
उनकी यह है भ्रांत धारणा जो, राग द्वेष मोहादि से अनुशासी।। (5)

जो जीव जितने-जितने अंश से, राग द्वेष मोहादि से परे होता जायेगा।
वह जीव उतने-उतने अंश से, स्वावलंबी आदि होता जायेगा।।
यह परम स्वावलंबी अवस्था ही है, परम स्वतंत्रता व परम सत्तावान्।
इसी अवस्था की प्राप्ति हेतु ही, 'कनक' सतत करे ध्यान-अध्ययन।। (6)

प्राथमिक धार्मिक-सम्यग्दृष्टि का स्वरूप

(चाल : सायोनारा.....)

सम्यग्दृष्टि के स्वरूप को जानो, प्राथमिक धार्मिक के ये लक्षण मानो।
इसके बिना कोई न होता धार्मिक, धर्म तो आत्मा के गुण सम्यक्।। (1)
आत्म श्रद्धानमय होता आत्मविश्वास, तदनुकूल होता है सत्य विश्वास।
सत्य-तथ्य पूर्ण होता है सुज्ञान, आत्मोपलब्धि ही होता परम ध्येय।। (2)

स्वयं को मानता है सच्चिदानंद, तन-मन-इन्द्रिय से रिक्त ज्ञानानन्द।
परम सत्य को ही मानता यथार्थ सत्य, लौकिक व्यवहार/(सत्य) को माने व्यवहार सत्य।। (3)

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का (होता है) भक्त, श्रद्धान करता द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ।
मिथ्यात्व अनंतानुबंधी पर पाता विजय, प्रशम अनुकम्पा संवेग आस्तिक्य सह।। (4)

सप्तभय-व्यसन मल-पच्चीस रिक्त, संसार शरीर व भोग से विरक्त।
अष्ट दोष रहित व अष्ट गुण सहित, अष्ट मद व तीन मूढ़ता रहित।। (5)

न्याय नीति व सदाचार युक्त, अन्याय-अत्याचार-शोषण रहित।
सनम्र गुणग्राही उदार चित्त युक्त, 'कनक' वर्णन किया काव्य में संक्षिप्त।। (6)

भाव विशुद्धि हेतु ही करणीय धर्म

(अशुभ-शुभ-शुद्ध भाव से होता है पाप-पुण्य व मोक्ष)

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

आत्म विशुद्धि के लिए ही पालनीय है सदा धर्म।
दान पूजा तीर्थयात्रा तप-त्याग ध्यान व अध्ययन।। (ध्रुव)

आत्म विशुद्धि रहित जो करते है बाह्य धर्म।
ख्याति पूजा व लाभ हेतु राग द्वेष सहित हो धर्म।।

सातिशय पुण्य का न होता बंध नहीं होता है पाप नाश।
पापानुबंधी होता पुण्यबंध संसार न होता नाश।। (1)

मिथ्यात्व सहित जो दिखावा हेतु करते है धर्म।
सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि हेतु निदान सहित पालते धर्म।।

उन्हें न यथार्थ से होता पुण्य, पुण्य बंधता है अतिकम।
पाप की निर्जरा भी नहीं होती, नहीं मिलता है मोक्षधाम।। (2)

जप करता हुआ सेठ, पानी-पानी का किया ध्यान।
मरकर स्व-बावड़ी में ही, मेंढ़क योनि में लिया जन्म।।

जाति स्मरण के बाद महावीर के दर्शन हेतु चल पड़ा।
कमल-दल मुख में लेकर, शुभ-भाव में चल पड़ा।। (3)

मार्ग में ही श्रेणिक के, हाथी के पैर से कुचल मरा।
अंतर्मुहूर्त में देव बनकर, समवशरण में पहुँच गया।।

आकाशगामिनी विद्या सिद्धि हेतु, सेठ ने णमोकार मंत्र जपा।
शंका के कारण से विद्या को, वह सिद्ध न कर पाया।। (4)

शंका रहित हो चोर ने, आणं-ताणं का जप किया।
शुभ भाव व एकाग्रता से, विद्या को शीघ्र सिद्ध किया।।

पुण्य पाप (व) बंध-मोक्ष सभी, होते हैं परिणामों से।
शुभ भावों से पुण्य बंध, पाप (होता) अशुभ परिणामों से।। (5)

शुद्ध भाव से होता है मोक्ष, भाव ही मुख्य सभी में।
शुभ व शुद्ध भाव, करणीय (है) दान पूजादि में।।

शुभ व शुद्ध भाव हेतु, धार्मिक क्रियाएँ हैं निमित्त (करण, साधन)।
बाह्य निमित्त के माध्यम से, पावन करणीय चित्त/(परिणाम)।। (6)

साधन बिना न कभी, होती है साध्य की सिद्धि।
साधन ही जब बाधक बनते, तो दूर हो जाती सिद्धि।।

लक्ष्य हो मोक्ष साधन तो, समुचित पावन हो चित्त।
साध्य मिलेगा अवश्य, 'कनक' वर्णन किया आगमोक्त।। (7)

स्व-स्व भूमिका में व्यवहार, धर्म भी सदा पालनीय।
भाव विशुद्धि हेतु व्यवहार धर्म सदा भी पालनीय।।

राग द्वेष मोह के क्षीण से होता है भाव विशुद्ध।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा निन्दादि, त्याग से होता भाव विशुद्ध।। (8)

संदर्भ-

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तु कामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।। (संस्कृत पूजा)

अपने भावों की परम शुद्धता को पाने का अभिलाषी मैं आगमानुकूल जल,

चन्दनादि द्रव्यों की शुद्धता को पाकर जिनस्तवन, जिनबिम्ब दर्शन आदि अनेक आवलंबनों का आश्रय लेकर भूतार्थ रूप पूज्य अरहंतादि का पूजन करता हूँ।

अर्हत् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यूननमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमल केवल बोध वह्नौ,
पुण्य समग्र महमेकमना जुहोमि।। (संस्कृत पूजा)

हे अर्हन्! हे पुराण पुरुषोत्तम! यह असहाय मैं इन पवित्र समस्त जलादि द्रव्यों का आलंबन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीप्यमान निर्मल केवलज्ञान रूपी अग्नि में एकाग्रचित्त होकर हवन करता हूँ।

उत्तम स्वात्म चिन्ता तो परचिन्ता अधमाधमा क्यों?

(आगम-अनुभव एवं समाज के परिप्रेक्ष्य में)

(राग : तुम दिल की.....)

'उत्तम स्वात्मचिन्तास्यात्' 'परचिन्ता च अधमाधमा।'
ऐसा पूर्व आचार्यों ने कहा, जिसका रहस्य मैंने जो समझा।। (ध्रुव)

आत्म चिन्तन है आत्म श्रद्धान, आत्मज्ञान व आत्मानुसंधान।
आत्म विश्लेषण आत्म शोधन, आत्मानुभव व आत्म ध्यान।।

द्वादश अनुप्रेक्षा-षोडश भावना, प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान।
इसी से होता आर्त्त रौद्र ध्यान त्याग, संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्याग।। (1)

(जिससे) राग द्वेष मोह होते क्षीण, ईर्ष्या घृणा तृष्णा (भी) होते क्षीण।
पाप-ताप व संताप नशते, आकर्षण-विकर्षण द्वन्द नशते।।

जिससे होता है एकाग्र मन, समता-शांति भी प्रवर्द्धमान।
आत्म विशुद्धि से होता धर्म-ध्यान, शुक्ल-ध्यान से श्रेणी आरोहण।। (2)

जिससे होता घाती कर्मनाश, अनंत चतुष्टय होता प्राप्त।
अघाती नाश से होते शुद्ध-बुद्ध, सच्चिदानंदमय परम-आत्म।।

इसलिये तो उत्तम आत्म चिन्ता है, जिससे होता है आत्म विकास।
परचिन्ता तो अधमाधमा, जिससे होता आत्म विनाश।। (3)

आत्म चिन्ता से पूर्ण विपरीत, परचिन्ता के भाव व्यवहार।
स्व-शुद्धात्मा के अतिरिक्त पर सचित्त-अचित्त व मिश्र प्रकार।।

शत्रु-मित्र भाई बन्धु कुटुम्ब, नौकर से लेकर पशु-पक्षी तक।
ये सब सचित्त पर द्रव्य, चेतना रहित अचित्त पर द्रव्य।। (4)

धन-धान्य सहित सचित्त द्रव्य होते मिश्र रूप में पर द्रव्य।
इन सब हेतु जो होते राग द्वेष, ईर्ष्या तृष्णा घृणादि परचिन्ता।।

आर्त्त रौद्र ध्यान-निन्दा चुगली, वाद-विवाद व प्रतिस्पर्द्धा।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश द्वन्द, आकर्षण-विकर्षणादि परचिन्ता।। (5)

इसी से विपरीत ही फल मिलता, जो आत्म चिन्तन से मिलता फल।
पाप-ताप-संताप आदि बढ़ते, संसार भ्रमण से मिलता दुःख।।

अतएव पर चिन्ता अधमाधमा नवकोटि से सदा त्यजनीय।
स्व-पर-विश्व हितकर चिन्तनीय, 'कनकनन्दी' का यही ध्येय।। (6)

बाल विद्यार्थी समय से ही, मैं कर रहा हूँ सतत आत्म चिन्तन।
पर कुचिन्ता मैं नहीं करता हूँ, जिससे मुझे मिले शान्ति-सम्मान।।

समय शक्ति का दुरुपयोग न होता, वाद-विवाद व कलह न होता।
शोध-बोध अनुभव बढ़ते, सेवा सहयोग भी करते लोग।। (7)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दिनांक 09.06.2016, रात्रि 9.05 व 10.52

(अधिकांश जन प्रायः आत्म चिन्तन के विपरीत परचिन्ता करते हैं अतः इस दुष्प्रवृत्ति से सतत पूर्णतः बचने हेतु मेरा आत्म सम्बोधन परक कविता।)
(यह कविता दिनेशचंद्र शाह की भावना से भी प्रेरित है।)

संदर्भ-

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखं।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।। (45)

The not-self are suely never the self, only sorrow accures to the soul from them; the self ever remains it self; it is therefore the cause of happiness; because of this, great persanages have exerted themselves for the realigation of the self!

पर देह धनादि पर ही है। उसे कभी भी आत्मा का, स्वयं का नहीं कर सकते हैं। इसलिए उसमें आत्मा का आरोपण करना दुःखों को निमंत्रण देना है। क्योंकि वे पर द्रव्य दुःखों के द्वार है, दुःखों के निमित्त है। उसी प्रकार आत्मा आत्मा का ही है। उसे कभी भी देहादि रूप में परिणमन नहीं कर सकते हैं अथवा आत्मा देहादि का उपादान नहीं है। इसलिए आत्मा से सुख है; दुःख के निमित्त उसके अविषय है। इसके लिए ही तीर्थंकरादि महात्मा आत्मा के निमित्त तपानुष्ठान रूपी उद्योग किया है।

समीक्षा–आचार्यश्री ने इस श्लोक में सुख का आधार तथा उसे प्राप्त करने का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उपाय बताया है। उन्होंने यह बताया कि दुःख आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा सुख दूसरों से प्राप्त नहीं होता है वरन् दुःख पर का स्वभाव है तथा सुख स्व-स्वभाव है। जो सुख के लिए दूसरों को/अनात्म स्वरूप को अपनाता है वह सुख के परिवर्तन में दुःखों को गले लगाता है। इसके विपरीत जो पर संयोग को त्याग करके आत्मा का ही आश्रय लेता है आलंबन लेता है वह सुख को प्राप्त करता है। इसका रहस्य यह है कि शुद्ध, स्वतंत्र आत्मा का स्वरूप ही अक्षय अनंत सुख स्वरूप है तथा शरीरादि पौद्गलिक द्रव्य है, जिसमें सुख का सर्वथा अभाव है। उसको स्वीकार रूप में जो मोह, राग है वह दुःख के निमित्त है। क्योंकि उसके कारण जो कर्म बंध होता है, उससे आत्मा परतंत्र हो जाता है और सुखादि गुण भी दुःख रूप में परिणमन कर लेते हैं परन्तु भेद विज्ञान तथा भेद क्रिया रूप वीतराग चारित्र से पर संबंध रूप बंधन कट जाता है। तब आत्मा के सुखादि गुण प्रगट हो जाते हैं। इसे ही स्वतंत्रता/निःसंगत्व/स्वाधीन मोक्ष कहते है। कहा भी है-

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो।
जादो अणिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि।। (19)

He develops knowledge and happiness after heving exhausted the destructive karmas, being endowed with excellent infinite strength and excessive lustre and after becoming supersensuous.

इस व्याख्यान में यह कहा है कि आत्मा यद्यपि निश्चय से अनंतज्ञान और अनंतसुख के स्वभाव को रखने वाला है तो भी व्यवहार से संसार की अवस्था में पड़ा हुआ है, जब इसका केवलज्ञान और अनंतसुख स्वभाव कर्मों से ढ़का हुआ है, तब तक पाँच इन्द्रियों के आधार से कुछ अल्पज्ञान व कुछ अल्पसुख में परिणमन करता है। फिर जब कभी विकल्प रहित स्वसंवेदन या निश्चय आत्मानुभव के बल से

कर्मों का अभाव होता है, तब क्षयोपशम ज्ञान के अभाव होने पर इन्द्रियों के व्यापार नहीं होते हैं, उस समय अपने ही अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख को अनुभव करता है, क्योंकि स्वभाव के प्रगट होने में पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा अभिप्राय है।

स्वभावतः प्रत्येक जीव अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्यादि, अनंतगुणों का अखण्ड पिण्ड है तथापि कर्मों के आवरण के कारण वे गुण आत्मा में ही गुप्त रूप में छिपे हुए हैं। कुंदकुंद देव ने समयसार में कहा भी है-

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण णियेणवच्छण्णो।
संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं।। (67)

वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जीव कर्मरज से आवृत्त होकर संसार में पतित हुआ है और सर्वदा सबको नहीं जानता है परन्तु जब वही कर्मरज रूपी आवरण हट जाता है तब वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य सम्पन्न बन जाता है इसलिए वस्तुतः ज्ञान या सुख, पर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु सहज आत्मोत्थ है।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।। (27 गीता पृ. 76)

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये है, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जत्रेवं सदात्मानं योगी विगतकलमषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।। (28)

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए पाप-रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्मप्राप्ति-रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

सामग्रीविशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्। (11)

(प्रमेयरत्नमाला पृ. 83)

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये है समस्त आवरण जिसके, ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते है।

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु।
आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवंस्तथैवा।।

पृ.102

तथा संन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार है- हे भगवान्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वाभाविक है,

तृप्ति नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यन्तिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है, शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। (पतञ्जली योगदर्शन 24 पृ.174)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लेशों से, शुभाशुभकृतियों से जन्य पुण्य-पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्ट, जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च। (49)

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को संपूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व का (अर्थात् संपूर्ण पदार्थों को नियंत्रित करने के सामर्थ्य का) और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात् संपूर्ण पदार्थों को ठीक-ठाक जान लेने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्। (50)

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेक ख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से, पर वैराग्यजन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम। (55) पृ. 424

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप से हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिघच्छापरमारोगा, संखारा परमा दुखा।

एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।। (धम्मपद नं.पृ. 65)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं, इसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

अविद्वान्पुद्गलद्रव्यं योऽभिनंदति तस्य तत्।

न जातु जंतोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति।। (46)

Matter which the undiscerning soul attaches itself to never leaves him wherever he goes in the four Gatis.

वर्तमान में पर द्रव्य में अनुराग रखना दोषकारक है इसे प्रदर्शित करते हैं। जो हेय उपादेय तत्त्व में अनभिज्ञ है ऐसे अविद्वान दोहदिक पुद्गल द्रव्य को स्वआत्मा स्वरूप से श्रद्धान करता है, अभिनंदन करता है तब उस जीव को नरकादि गति को

प्राप्त कराने योग्य पुद्गल द्रव्य उसका सामीप्य नहीं छोड़ता है।

समीक्षा–यहाँ पर आचार्यश्री ने नाटकीय एवम् साहित्यिक पद्धति से कर्म सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। कर्म सिद्धांत के अनुसार जीव मोही होकर अज्ञान भाव से राग-द्वेष से प्रेरित होकर कर्म का आस्रव करता है और बंध करता है और वह कर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग एवं प्रदेश रूप में बंधकर जीव के साथ रहता है और विभिन्न प्रकार के सुख-दुःख को देता रहता है। जब तक जीव को वह फल नहीं देता है तब तक वह जीव से पृथक् नहीं होता है। इस अवस्था को स्थिति बंध कहते हैं। स्थिति बंध पूर्ण होने के बाद जब कर्म फल देता है उसे उदय कहते हैं।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं।
मंसवसारुहिरादिभावे उदराग्गि संजुत्तो।।

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार माँस, रुधिर आदि भावों रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के रागादि भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भोजन से पहले खाद्य सामग्री, रोटी, भात, दाल आदि रूप में रहती है। भोजन करने से वही खाद्य सामग्री खाने वाले के चर्वण, लार पाचन शक्ति आदि के निमित्त से रस, रूधिर, मांस, मेद (चर्बी), अस्थि मज्जा, वीर्य, ओज आदि रूप परिणमन हो जाती है। इसी प्रकार कर्मवर्गणा जब तक जीव के योग और उपयोग का निमित्त प्राप्त करके आस्रव एवं बंधरूप परिणमन नहीं करता है तब तक वह वर्गणा केवल भौतिक पुद्गल स्वरूप ही रहती है। जीव के योग्य एवं उपयोग को प्राप्त करके वही कर्मवर्गणा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय आदि कर्मरूप से परिणमन कर लेती है। जीव के योग एवं उपयोग को प्राप्त करने से पहले कर्मवर्गणा जड़ रूप में रहती है एवं योग उपयोग रूपी जीव के शुभाशुभ निमित्त को प्राप्त करके दैव रूप में परिणमन कर लेती है। इससे सिद्ध होता है कि दैव भी पुरुषार्थ से जायमान/उत्पन्न है। जैसे अण्डा से पक्षी। उसी प्रकार शुभाशुभ पुरुषार्थ भी पूर्वाजित दैव के कारण होता है। इसलिये कथञ्चित पुरुषार्थ भी दैव से जायमान है। जैसे अण्डा से पक्षी जायमान है और पक्षी से अण्डा जायमान है। जैसे बीज से वृक्ष एवं वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है, उसी प्रकार कथञ्चित् कर्म (दैव) से पुरुषार्थ एवं पुरुषार्थ से कर्म उत्पन्न होता है। अभव्य जीव के दैव एवं पुरुषार्थ की परंपरा अनादि अनंत होते हुए भी मोक्ष जाने

वाले भव्यों की यह परंपरा अनादि शांत है।

आत्मध्यान का फल-स्वरूप

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनं।। (47)

He who is firmly established in his own self and keeps away from the worldly intercourse a supreme kind of happiness is produced in the being of such a yogi!

देहादि से निवृत्त होकर जो स्व-आत्मा में ही लीन होकर प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार से दूर होकर ध्यान करता है ऐसे योगी को स्व-आत्मा ध्यान से एक अनिर्वचनीय परम आनंद उत्पन्न होता है जो आनंद अन्य में असंभव है।

समीक्षा-प्रत्येक आत्मा अनंत अक्षय-ज्ञान-घन या परमानंद स्वरूप है परन्तु जिस प्रकार घने बादल के कारण सूर्य रश्मि प्रकट नहीं होती है उसी प्रकार घने कर्म के कारण राग-द्वेष-संकल्प-विकल्प के कारण वह स्वभाव लुप्त प्रायः है। तथापि जिस प्रकार बादल हटने पर, घटने पर सूर्य रश्मि प्रगट हो जाती है उसी प्रकार साधना के बल पर कर्मादि क्षीण होने पर, विलीन होने पर स्व में निहित आनंद प्रकट हो जाता है। यह आनंद जीव का स्वाभाविक गुण या आनंद है। इस आनंद को प्राप्त योगी के लिए संसार के समस्त सुख, वैभव तुच्छ प्रायः प्रतिभासित होता है, दुःख रूप में दिखाई देता है। इसे ही सच्चिदानंद, आत्मानंद, परमानंद, अनंत सुख, अलौकिक आनंद, इन्द्रियातीत आनंद, ब्रह्मानंद आदि नाम से अभिहित किया जाता है। इस आनंद को ही प्राप्त करने के लिए समस्त धार्मिक विधियाँ की जाती है। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती आदि भी इस आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त वैभव त्याग कर सर्व संन्यास लेकर ध्यान करते है। हर संप्रदाय के महापुरुष साधु-संत इस आनंद को प्राप्त करने के लिए साधना तथा ध्यानरत रहते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार महर्षि कपिल, पातञ्जली यहाँ तक कि हिन्दू धर्म के सर्वश्रेष्ठ देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इस आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त, कार्यकलाप गतिविधियों को छोड़कर ध्यान लीन रहते हैं। जैन धर्म के अनुसार शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ जो स्वयं गृहस्थावस्था में चक्रवर्ती, कामदेव थे तथा जिनके दो कल्याणक हो गए थे और तीन ज्ञान के भी धारी थे वे भी इस परम् आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त वैभव

त्यागकर, साधु बनकर आत्म ध्यान में लीन हो गए।

गीता में महामानव नारायण श्री कृष्ण ने अर्जुन के लिए ध्यान का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार विवेचन किया है-

यत्रो परमते चित्तं निरूद्धं योग सेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्चन्मात्मानि तुष्यति।।
सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यामतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चेवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचारल्यते।।
तं विद्याददुःखसंयोग वियोगं योग संज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।

योग के सेवन से अंकुश में आया हुआ मन जहाँ शांति पाता है, आत्मा से ही आत्मा को पहचानकर आत्मा में जहाँ मन संतोष पाता है और इन्द्रियों से परे और बुद्धि से ग्रहण करने योग्य अनंत सुख का जहाँ अनुभव होता है, जहाँ रहकर मनुष्य मूल वस्तु से चलायमान नहीं होता और जिसे पाने पर दूसरे किसी लाभ को वह उससे अधिक नहीं मानता और जिसमें स्थिर हुआ महादुःख से भी डगमगाता नहीं, उस दुःख के प्रसंग से रहित स्थिति का नाम योग की स्थिति समझना चाहिए। यह योग ऊबे बिना दृढ़तापूर्वक साधने योग्य है।

प्रशान्तमनस ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शांत रजसं ब्रह्मयूतकल्मषम्।

जिसका मन भली-भाँति शांत हुआ है जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्प्रर्शमनन्तं सुखमश्नुते।।

आत्मा के साथ निरंतर अनुसंधान करते हुए पाप रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

समधिगतसमस्ताः सर्वसावद्यदूराः,
स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः।

स्वपरसफलजल्पाः सर्वसंकल्प मुक्ताः,
कथमिह न विमुक्ते भर्जिनं ते विमुक्ताः।। (226) आत्मानुशासन

जो समस्त हेय-उपादेय तत्त्व के जानकार हैं, सब प्रकार की पाप क्रियाओं से रहित हैं, आत्महित में मन को लगाकर समस्त इन्द्रिय व्यापार को शांत करने वाले हैं, स्व और पर के लिए हितकर वचन का व्यवहार करते हैं तथा सब संकल्प-विकल्पों से रहित हो चुके हैं; ऐसे वे मुनि यहाँ कैसे मुक्ति के पात्र न होंगे? अवश्य होंगे।

स्व-शुद्धात्मा से भिन्न है कर्मज उपलब्धियाँ

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा-विनिर्मलः साधिगम स्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता-न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः।। (26)

My self is ever one, Eternal, pure, and all knowing in its essence. All the rest are all outside me, non-eternal and brought about as results of one's own karmas.

भावार्थ-मेरा आत्मा सदा एक है, शाश्वत है, पवित्र है, ज्ञान स्वभावी है अन्य संपूर्ण बाह्य में उत्पन्न होने वाले है वे सब कर्म से उत्पन्न हैं, वे सब अपने नहीं है, शाश्वतिक नहीं है।

प्राप्त शिक्षाएँ-ब्रह्माण्ड में अनंतानंत जीव है और प्रत्येक जीव स्वतंत्र सत्ता वाला है। इसलिए तो कोई एक मरने पर ब्रह्माण्ड के संपूर्ण जीव नहीं मरते हैं, एक जीव जन्म लेने पर संपूर्ण जीव जन्म नहीं लेते हैं, ऐसा ही सुख-दुःख भाव-व्यवहार में भी जान लेना चाहिए। जीव द्रव्य/सत्य होने से अनादि अनंत काल से है और अनंत भविष्य तक होने से शाश्वत है। शुद्ध जीव शरीर इन्द्रिय-मन-मस्तिष्क-मोह-राग-द्वेष-कामादि भाव से रहित होने से निर्मल अमूर्तिक-पवित्र है, ज्ञान स्वरूप ही आत्मा (जीव) है। अतः जीव की उत्पत्ति कोई निश्चित कालावधि में किसी निश्चित भौतिक-रासायनिक प्रक्रिया से उत्पन्न होकर मरने के बाद नाश होने वाला नहीं है। जन्म-मरण, सांसारिक विभिन्न अवस्थाएँ, संबंध, सुख-दुःख आदि कर्मज है। कर्म संबंध से उत्पन्न होने वाले हैं। जैसा कि आकाश का दृश्यमान आकार-रूप-रंग आदि शुद्ध आकाश नहीं है परन्तु भौतिक-तत्त्व के संयोग से है वैसा ही शुद्धात्मा से भिन्न समस्त भाव-व्यवहार-अवस्थाएँ-शरीर-राग-द्वेष-ज्ञान आदि कर्म संयोग से उत्पन्न हुए है।

भौतिक-कर्मज आत्मा से भिन्न

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्ध्दं-तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः-कुतोहि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये।। (27)

How can he, who is not one even with his own body, by connected with his son, wife, friends, when the skin is removed from the body, where would the pores remain.

भावार्थ-जिसका शरीर के साथ भी एकत्व नहीं है उसका पुत्र, स्त्री और मित्रों के साथ क्या एकत्व है? चमड़ी के पृथक करने पर शरीर में बालों के छिद्र निश्चय से किस प्रकार रह सकते हैं? अर्थात् निश्चय से बालों के छिद्र नहीं रह सकते हैं?

प्राप्त शिक्षाएँ-शरीर का निर्माण माता के रज-वीर्य एवं कर्म (नो कर्म) के उदय से होता है। रज-वीर्य एवं कर्म पौद्गलिक (भौतिक-रासायनिक) है जबकि आत्मा (शुद्धात्मा) अमूर्तिक-चैतन्य (ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य-आध्यात्मिक शक्ति) स्वरूप है। इस दृष्टि से शरीर से विजातीय द्रव्य आत्मा होने से शरीर से पृथक आत्मा है। शरीर से संबंधित माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, भाई-बंधु, शत्रु-मित्र आदि तक तो पृथक/भिन्न/अलग है ही। जैसा कि चर्म को शरीर से अलग करने से बाल के छिद्र भी अलग हो जाते हैं क्योंकि वह छिद्र चर्म के आश्रय से होते हैं वैसा ही शरीराश्रित माता-पितादि भी आत्मा से भिन्न है। अतः शरीर के समान ही माता पितादि के प्रति मोह/ममत्व/राग/एकत्व भाव नहीं रखना चाहिए।

यद्यपि संसारावस्था में व्यवहार नय से जीव एवं शरीर तिल-तैल, दूध-घी, दूध-पानी के जैसे एकमेक सा हो रहे हैं (लग रहे हैं) तथापि शुद्ध निश्चय से तात्त्विक दृष्टि से भिन्न-भिन्न है। ऐसा श्रद्धान-विवेक रखते हुए यथायोग्य स्व-शरीर तथा शरीर से युक्त जीवों के प्रति आध्यात्मिक-साधना के अनुकूल भाव-व्यवहार करना चाहिए अर्थात् शरीर को स्वस्थ रखते हुए आध्यात्मिक साधना तथा माता-पितादि से वात्सल्य/साम्य भाव/आत्म भाव रखते हुए आत्म कल्याण करना चाहिए। न राग न द्वेष, न आसक्ति, न वैरत्व भाव होना चाहिए। क्योंकि यह सब भाव व्यवहार अनात्म होने से इससे कर्मबंध होता है जिससे संसार में परिभ्रमण करते हुए दुःख भोगना पड़ता है।

श्यामो गौरः कृशः स्थूलः काणः कुण्ठोऽबलो बली।
वनिता पुरुषः षण्ढो विरूपो रूपवानहम्।। (59) अ. श्रावकाचार

जो अपने को मैं काला हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं पतला हूँ, मैं मोटा हूँ, मैं काणा हूँ, मैं विकलाङ्ग हूँ, मैं निर्बल हूँ, मैं सबल हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं नपुंसक हूँ, मैं कुरूप हूँ, मैं रूपवान हूँ।

जात देहात्म विभ्रान्तेरेषा भवति कल्पना।

विवेकं पश्यतः पुंसो न पुनर्देहदेहिनोः।। (60)

इस प्रकार (उपरोक्त प्रकार से) शरीर में आत्मा की भ्रांति वाले जिस पुरुष की कल्पना होती है और जिसे देह और देही (जीव) का भेद दिखाई नहीं देता, उसे बहिरात्मा कहते है। किन्तु जिसे देह और देही का भेद दिखाई देता है, ऐसे सम्यग्दृष्टि पुरुष के उक्त प्रकार की कल्पना नहीं होती है।

शत्रु मित्र पितृ भ्रातृमातृकान्ता सुतादयः।

देह सम्बन्धतः सन्ति न जीवस्य निसर्गजाः।। (61)

देह (शरीर) का अपकार करने वाला सो शत्रु व देह का उपकार करने वाला सो मित्र और देह को उत्पन्न करने वाला सो पिता और जहाँ देह की उत्पत्ति वहाँ ही जिसकी उत्पत्ति होती है वह भाई (सहोदर), देह को उत्पन्न करे सो माता, देह को जो रमावे सो स्त्री, देह से उत्पन्न सो पुत्र आदि सभी संबंध जीव के देह के संसर्ग से हैं, स्वाभाविक (नैसर्गिक) नहीं है।

देहे यात्ममतिर्जन्तोः सा वर्द्धयति संसृतिम्।

आत्मन्यात्ममतिर्या सा सद्यो नयति निर्वृतिम्।। (66)

जीव की शरीर में जो आत्मबुद्धि होती है, वह संसार को बढ़ाती है। किन्तु आत्मा में जो आत्मबुद्धि होती है, वह शीघ्र ही मुक्ति को ले जाती है।

यो जागर्त्याऽऽत्मनः कार्ये कायकार्यं स मुञ्चति।

यः स्वपित्यात्मनः कार्ये कायकार्यं करोति सः।। (67)

जो पुरुष आत्मा के कार्य में जागता है, वह शरीर के कार्य को छोड़ता है। किन्तु जो आत्मा के कार्य में सोता है, वह शरीर के कार्य को करता है।

दुःखदायी संयोग सर्वथा त्यजनीय

संयोगतो दुःखमनेकभेदं-यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।

ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो-यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्।। (28)

The self, encased in the body, undergoes various sorts of

sufferings; Because of this external connection. Therefore he who desires Deliverance of the self should avoid this corporal contact through mind, speech and action.

भावार्थ–क्योंकि संसारी जीव संसार रूपी वन में संयोग कारण अनेक प्रकार के दुःख को प्राप्त करता है इसलिए आत्मा के उद्धारक, मोक्ष के इच्छुक पुरुष को इनको तीन प्रकार से छोड़ देना चाहिए।

प्राप्त शिक्षाएँ–भाव कर्म (मोह-राग-द्वेषादि) के संयोग से द्रव्यकर्म (ज्ञानावरणादि 8 कर्म) का संयोग होता है तथा द्रव्य कर्म के कारण शरीर, माता-पितादि चेतन, धन-संपत्ति आदि अचेतन तथा अलंकार-वस्त्र-धनादि से युक्त पुत्रादि भाई-बंधु आदि मिश्र परिग्रहों (संयोग) को मन-वचन-काय से अर्थात् मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमत के गुणन रूप 9 कोटि/भेद से त्याग देना चाहिए।

क्षमा दान–क्षमा माँगना से परे

–आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की.....)

क्षमा दान-क्षमा माँगना से परे, मैं परम समता में रहूँ।
राग-द्वेष-मोह-वैर-विरोध परे, आध्यात्मिक भाव में रहूँ।।

मेरा स्वरूप तो सच्चिदानंदमय, अमूर्तिक शुद्ध-बुद्ध।
तन मन अक्ष राग द्वेषादि परे, मोह क्षोभ से रहित।। (1)

मेरा न कोई शत्रु व मित्र, अपना-पराया संबंध।
मेरा ही मुझसे सदा संबंध, मैं हूँ मेरा कर्त्ता-धर्त्ता।।

क्षमा दान तब करूँगा जब मैं, अन्य से रखूँ अक्षमा भाव।
तब तक मैं तो स्वभाव से च्युत, रहा यह है मेरा अधर्म भाव।। (2)

क्षमा माँगना तो तब मैं करूँगा, जब मानूँ मैं अन्य को शत्रु।
शत्रु मानना ही मेरा आत्म पतन है, तब मैं ही बन जाऊँगा मेरा शत्रु।।

दोनों अवस्था में न स्वधर्मी रहा, जिससे मैं न रहा सुधर्मी।
अन्य के कारण विधर्मी हो गया, जिससे मैं हो गया कुधर्मी।। (3)

अन्य से प्रभावित होकर यदि मैं, अक्षमाभावी रहा उसका बना दास।

अन्य से परिचालित होने पर बना, मैं गुलाम व परतंत्र।।

तथापि आगम-शुभ परंपरा से, क्षमा दान व क्षमा माँगता हूँ।
तथापि स्व-पर के कारण से, अक्षमा भाव न धरता हूँ।। (4)

नवकोटि से परम साम्य हेतु, सतत मैं प्रयत्नरत हूँ।
अभिन्न षट्कारक मैं ही बनूँ, 'कनक' भावना भाता हूँ।। (5)

आसपुर, दिनांक 03.07.2016, संध्या 7.25

विश्व की सर्वोच्चताएँ

(चाल : सायोनारा....., गजानना...(मराठी)....., जिस देश में गाँधी....., भातुकली.....)

एक ही सत्य है परम सत्य...जो जीव-अजीव में व्याप्त...
उत्पाद व्यय युक्त ध्रौव्य सहित...जो अनादि अनिधन शाश्वत...(1)...

एक ही धर्म है परमो धर्म...जो वस्तु स्वभावमय स्वधर्म...
उसके अंतर्गत जीवों का स्वधर्म...सच्चिदानंदमय आत्मधर्म...(2)...

एक ही नीति है समता नीति...जो भेद-भाव पक्षपात शून्य...
स्वाधीन समता समान अधिकार...शांति समन्वय व सौम्य...(3)...

एक ही विधान है परम संविधान...जो अन्त्योदय-सर्वोदय युक्त...
मालिक-मजदूर शासक-शासित शून्य...सर्वजीव सह अस्तित्व युक्त...(4)...

एक ही लक्ष्य है परम लक्ष्य...जो शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय...
आधि-व्याधि-उपाधि रहित...जो अनंत अव्याबाध सुखमय...(5)...

एक ही शासन है आत्मानुशासन...जो भय-लोभ से शून्य...
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त...साम-दाम-दण्ड-भेद से शून्य...(6)...

एक ही ज्ञान है परम ज्ञान जो...स्व-शुद्धात्म-अनुभवपूर्ण ज्ञान...
इसी ज्ञान में पूर्ण विश्व भी...ज्ञात होता जो अनंत सम्यक् ज्ञान...(7)...

एक ही उपलब्धि परम उपलब्धि...जो स्व-शुद्धात्मा की उपलब्धि...
इसी हेतु पूर्वोक्त सर्वोच्चता चाहिए...'कनक' का लक्ष्य स्व-उपलब्धि...(8)...

आसपुर, दिनांक 04.07.2016, रात्रि 10.40

संदर्भ-

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा।। (1)
जीवमजीवं द्रव्यं जिनवरवृषभेण येन निर्दिष्टम्।
देवेन्द्रवृन्दवन्द्यं वन्दे तं सर्वदा शिरसा।।

I always salute with my head the eminent one among the great Jinas, who worshipped by the host of Indras and who has described the Dravyas (substances) Jiva and Ajiva.

मैं (नेमिचंद) जिस जिनवरों में प्रधान ने जीव और अजीव द्रव्य का कथन किया, उस देवेन्द्रादिकों के समूह से वंदित तीर्थंकर परमदेव को सदा मस्तक से नमस्कार करता हूँ।

इस मंगल स्मरण एवं प्रतिज्ञा-सूचक गाथा में आचार्यश्री ने सच्चे हितोपदेशी, सर्वज्ञ भगवान् को नमस्कार किया है। जिनेन्द्र भगवान् ने जो कुछ प्रतिपादन किया है उसमें मूलभूत दो द्रव्य हैं। यथा-(1) जीव द्रव्य (2) अजीव द्रव्य। द्रव्य विशेष रूप से अजीव द्रव्य के पाँच भेद हैं। यथा-(1) पुद्गल द्रव्य (2) धर्म द्रव्य (3) अधर्म द्रव्य (4) आकाश द्रव्य (5) काल द्रव्य।

इसी प्रकार उपर्युक्त छहों द्रव्यों से ही विश्व का निर्माण हुआ है। अर्थात् विश्व के मौलिक द्रव्य छह ही हैं और छहों द्रव्य जीव और अजीव में गर्भित हैं। इसलिए विश्वदृष्टा, विश्वज्ञाता, विश्व-विद्या-विशारद एवं विश्व-तत्त्व-व्याख्याता-तीर्थंकर भगवान् ने जीव द्रव्य एवं अजीव द्रव्य के कथन से संपूर्ण विश्व के संपूर्ण तत्त्वों का व्याख्यान किया है। जिनेन्द्र भगवान् विश्व तत्त्व के ज्ञाता, दृष्टा एवं व्याख्याता होते हुए भी विश्व के कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता नहीं हैं। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अकृत्रिम, अनादि-अनिधन, स्वभाव से निवृत्त तथा शाश्वतिक होते हुए भी स्वाभाविक रूप से स्वयं ही कर्त्ता (सत्तावान, स्वभाव वाला, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य को करने वाला), हर्त्ता (उत्पाद-व्यय रूप से पर्यायों को स्वयं में लीन करने वाला) है। त्रिलोक सार में कहा भी है-

लोगो अकिट्ठिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहि फूडो सव्वागास अवयवो णिच्चो।। (त्रिलोक सार)

निश्चय से लोक अकृत्रिम, अनादि अनिधन, स्वभाव से निष्पन्न, जीवा जीवादि

द्रव्यों से सहित, सर्वाकाश, अवयव स्वरूप और नित्य है। समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है-

नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति।। (4)

सर्वथा, सर्वदा असत् वस्तु का जन्म अर्थात् प्रादुर्भाव नहीं होता है और सर्वथा सत् वस्तु का विनाश भी नहीं होता है। जिस प्रकार प्रज्ज्वलित दीपक को बुझा देने पर भी प्रकाश रूप पुद्गल की पर्याय पूर्णतः नाश नहीं हो जाती है परंतु अंधकार रूप में परिणमन कर जाती है। नारायण कृष्ण ने भी गीता में कहा है-

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।। (गीता)

और परमेश्वर भी भूत, प्राणियों के न कर्त्तापन को और न कर्मों को और न ही कर्मों के फल संयोग को वास्तव में रचता है, अपितु परमात्मा के सकाश से ही प्रकृति वर्तती है, अर्थात् गुण ही गुण में वर्तते हैं।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।। (गीता)

और सर्वव्यापी परमात्मा, न किसी के पाप कर्म को और किसी के शुभ कर्म को ग्रहण करता है, बल्कि (माया के) अज्ञान द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, इससे सब जीव मोहित हो रहे हैं।

द्रव्य दृष्टि से द्रव्य शाश्वतिक होने पर भी पर्याय दृष्टि से द्रव्य नित्य परिवर्तनशील होने के कारण अशाश्वतिक, क्षणभंगुर, क्षण-स्थायी तथा विनाशीक है क्योंकि सत्-स्वरूप द्रव्य का लक्षण बताते हुए आचार्य उमास्वामी 'तत्त्वार्थ सूत्र' में उल्लेख करते हैं कि-**उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत्**।

Sat (is a) simultaneous possession (of) Utpada, coming into existance, birth, Vyaya, going out of existance, decay, and Dhrauvya, continuous sameness of existence, premanence.

The meaning is that the substance remains the same, but its condition always changes.

सत् स्वरूप द्रव्य अपनी सत्ता को बिना परिवर्तित किए प्रति समय पूर्ववर्ती प्राचीन पर्याय को त्याग कर उत्तरवर्ती नवीन पर्याय को धारण करता है। द्रव्य का अनंत भूतकाल, एक समयवर्ती वर्तमान काल एवं भूतकाल से भी अनंतगुणित भविष्यत्

काल में प्रति समय पर्याय रूप से परिवर्तित होते हुए भी द्रव्य रूप से स्व-सत्ता को कायम रखना ध्रौव्य है।

द्रव्य रूप में ध्रौव्य होते हुए प्रत्येक समय पूर्ववर्ती पर्याय का विनाश (लय-प्रलय) होना व्यय है।

द्रव्य रूप से ध्रौव्य होते हुए भी प्रत्येक समय में पूर्ववर्ती पर्याय का विनाश होने पर उत्तरवर्ती नवीन पर्याय का जन्म/उत्पत्ति/प्रादुर्भाव होना उत्पाद है।

षड् द्रव्यमयी विश्व होने के कारण एवं छहों द्रव्य प्रत्येक समय में पर्याय अपेक्षा द्रव्य प्रलय धर्मी होने से विश्व भी प्रत्येक समय में प्रलय धर्मी है।

उपर्युक्त जो परम वैज्ञानिक त्रिकाल में अखंडित, वस्तु स्वातंत्र्य एवं वस्तु स्वरूप का कथन करने वाले ऐसे जिनवरवृषभ अर्थात् परम तीर्थंकर देव हैं उन्हें नमस्कार है।

''जिणवरवसहेण'' मिथ्यात्व और राग आदि को जीतने से असंयत सम्यग्दृष्टि आदि एकदेशी जिन हैं, उनमें जो वर (श्रेष्ठ) हैं, वे जिनवर अर्थात् गणधर देव हैं, उन जिनवरों (गणधरों) में भी जो प्रधान हो वे जिनवर वृषभ अर्थात् तीर्थंकर परमदेव हैं ऐसा जिनदेव ने कहा है। इससे सिद्ध होता है सर्वज्ञ भगवान् ही समस्त सत्य के पूर्ण ज्ञाता है, इसलिए उनके द्वारा प्रतिपादित विषय ही सत्य एवं तथ्यपूर्ण है। छद्मस्थ (असर्वज्ञ, गणधरादि, बाहरवें गुणस्थान तक) जीव संपूर्ण सत्य के ज्ञाता नहीं होने के कारण उनके द्वारा प्रतिपादित विषय पूर्ण सत्य नहीं हो सकता है। इसलिए तो चार ज्ञान के धारी एवं 64 रिद्धि सम्पन्न, तद्भव मोक्षगामी क्षायिक सम्यग्दृष्टि गणधर परमश्रेष्ठी भी अर्हंत भगवान् के द्वारा प्रतिपादित वस्तु स्वरूप का ही संपादन करते हैं, लिपिबद्ध करते हैं, उपदेश करते हैं एवं प्रचार-प्रसार करते हैं।

स्व-जाति परम वैरी होते भी हैं जीव

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

स्व-जाति परं वैरी होते भी हैं जीव, साथ में रहकर भी करते विरोध-भाव।
स्व-जाति भक्षक भी होते कोबरा सम, गुण-गुणी में भी करते ईर्ष्या-विषम।।

ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-मात्सर्य के कारण, सत्ता-संपत्ति-वर्चस्व के कारण।
ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि के हेतु, काम भोग व उपभोग के हेतु।।

भोजन-पानी व निवास के हेतु, परस्पर-वैरत्व करते जीवन हेतु।
परस्पर के बिना न कोई काम भी होता, परस्पर को कष्ट देना पाप ही होता।।

सिंह आदि मांसाहारी भी लड़ते वर्चस्व हेतु, भोजन निवास व भोगादि हेतु।
शाकाहारी पशु भी इसी हेतु ही लड़ते, बुद्धिजीवी मानव तो अधिक लड़ते।।

पशुओं की इच्छाएँ तो सीमित होती, मानवों की इच्छाएँ तो असीम होती।
इसी हेतु पशु से भी मानव अधिक लड़ते, सुख-शांति के लिए भी अधिक लड़ते।।

समगुणी या विषमगुणी धनी-धनी, एक धर्मावलंबी व अन्य धर्मावलंबी।
सम अधिकारी या विषम अधिकारी, वैरत्व करते हैं परस्पर पदाधिकारी।।

इसी से सुख-शांति-सहयोग घटते, धन-जन-साधन-सम्मान घटते।
परस्पर सहयोग सह-अस्तित्व विधेय, इसी हेतु 'कनकनन्दी' रचा ये काव्य।।

आसपुर, दिनांक 05.07.2016, अपराह्न 5.51

संदर्भ-

'कविं कविर्न सहते' यत् लोक मध्ये प्रसिद्धम्, एतत सत्यम् यतः
न संहति इक्कयिक्कं न विणा चिट्ठंति इक्कमिक्केण।
रासहवसह तुरंगा जूयारा पंडिया डिंभा।।112।।
शिष्टाय दुष्टो विरताय कामी निसर्गतो जागरकाय चौरः।
धर्मार्थिने कुप्यति पापवृत्तिः शूराय भीरुः कवये कविश्च।।113।।
सूपकारं कविं वैद्य विप्रो विप्रं नटो नटम्।
राजा राजानमालोक्य श्ववद् घुरघुरायते।।114।।
प्रकुप्यति नरः कामी बहुलं ब्रह्मचारिणे।
जनाय जाग्रते चौरो रजन्यां संचरन्निव।।115।।

कवि कवि को सहन नहीं करता है, यह जो लोक में प्रसिद्धि है वह सत्य है। क्योंकि-

गधा, बैल, घोड़ा, जुआरी, पंडित और बालक में एक-एक को सहन नहीं करते और एक, एक के बिना रहते भी नहीं हैं।।112।।

दुष्ट मनुष्य शिष्ट मनुष्य से, कामी व्रती से, चौर स्वभावतः जागने वाले से, पापी धर्मात्मा से, भीरु शूरवीर से और कवि, कवि से क्रोध करता है।।113।।

रसोइया रसोइया को, वैद्य वैद्य को, ब्राह्मण ब्राह्मण को, नट नट को और राजा राजा को देखकर कुत्ते के समान घुरघुराता है।।114।।

कामी मनुष्य ब्रह्मचारी से, उस प्रकार अत्यधिक कोप करता है जिस प्रकार की रात्रि में घूमने वाला चोर जागने वाले मनुष्य से कोप करता है।।115।।

कीट-पतंग-पापी से लेकर पंच परमेष्ठी का वर्णन आगम में क्यों?

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

कीट-पतंग से पशु-पक्षी-वृक्ष व नारकी-देव-मानव।
दुष्ट-दुर्जन-चोर-हत्यारों का भी वर्णन करता है आगम।।

पुण्य-पाप व धर्म-अधर्म का भी वर्णन करता है आगम।
सप्त-व्यसनी से लेकर पंच परमेष्ठी तक वर्णन करता है आगम।।

इन सबके वर्णन बिना संभव नहीं है धर्म का वर्णन।
व्यवहार से नैतिक तक व न्याय सदाचार का वर्णन।।

भाषा-व्याकरण-इतिहास-पुराण, दृष्टांत तथा द्राष्टांत।
कार्य-कारण व हेय-उपादेय, प्रकृति-पर्यावरण का वर्णन।।

संगीत-कला-चित्रकारी व वास्तु निर्माण व अंगविज्ञान।
कविता नाटक सप्त स्वर व, न संभव योगासन वर्णन।।

चार पुरुषार्थ व चार आश्रम, असि मसि कृषि व वाणिज्य।
गुणस्थान मार्गणा व चतुर्गति, चौरासी लक्ष्य योनि वर्णन।।

आधुनिक विज्ञान व चिकित्साशास्त्र, उपकरण-यान-वाहन।
भोजन-आवास-वस्त्र गृहोपकरण, भी इनके बिना न संभव।।

विज्ञान को तो प्रकृति का ज्ञान, माना जाता है सुप्रसिद्ध।
जैन धर्म में तो विज्ञान से भी अधिक हुआ प्रकृति का वर्णन।।

इन सब कारणों से जैन धर्म में, वर्णन है उपरोक्त विषय।
अधिकांश जन ऐसा शोध-बोध, नहीं कर पाते हैं विशेष।।

अतएव इनसे लाभान्वित नहीं हो पाते हर क्षेत्र में।
अतएव इसे सही बताने हेतु, 'कनक' वर्णन किया संक्षेप में।।

आसपुर, दिनांक 08.07.2016, अपराह्न 5.47

B.A., M.A., Ph.D. में ज्ञान/(शिक्षा) की सीमा नहीं

(चाल : तुम दिल की.....)

रदरफोर्ड से आइन्स्टीन तक, हजारों भी वैज्ञानिक।
एक परमाणु को न जान पाये, क्या ज्ञान है M.A. तक।।

ज्ञान (शिक्षा) की सीमा को, B.A. या M.A. में बाँधना।
मानो आकाश को डिब्बी की सीमा में बाँधना।।

एक ही परमाणु में होते हैं अनंत गुण व पर्याय।
एक परमाणु को पूर्णतः जान पाते हैं सर्वज्ञ।।

Ph.D. करना भी कोई, ज्ञान की सीमा नहीं।
अनंत ज्ञेय होते हैं अतः ज्ञान भी अनंत।।

एक ही विषय में कोई करता है B.A., M.A., Ph.D.।
तथापि उस एक विषय का, नहीं होता है पूर्ण ज्ञान।।

सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई भी न, जानता एक का भी पूर्ण ज्ञान।
एक का ही जब नहीं पूर्ण ज्ञान, सबका कैसे हो पूर्ण ज्ञान।।

शिक्षा की प्रणाली (जो) Ph.D. तक, यह है आजीविका ज्ञान।
आजीविका ज्ञान से अनंतगुणा, होता है यथार्थ ज्ञान।।

एक ही स्व-आत्मा को जानने हेतु, अनंत ज्ञान चाहिए।
अतएव स्व-आत्मज्ञान हेतु 'कनकनन्दी' प्रयासरत।।

आसपुर, दिनांक 07.07.2016, मध्याह्न 3.00

झूठे धार्मिक व सच्चे धार्मिक

(चाल : बड़ा नटखट है रे.....)

हाय रे! संकीर्ण धार्मिक वाले, राग द्वेष मोह युक्त वाले।

संकीर्ण स्वार्थी व अज्ञानी वाले, धन जन ख्याति चाहने वाले...होऽऽऽ...(स्थायी)...

उदार सहिष्णुता रहित वाले, सत्य समता रहित वाले।
ईर्ष्या द्वेष घृणा सहित वाले, अहंकार ममकार सहित वाले।।

भेद-भाव पक्ष-पात सहित वाले, शुचिता शांति रहित वाले।
हठाग्रह दुराग्रह से सहित वाले, सरल-सहजता रहित वाले होऽऽऽ।। हाय रे...(1)...

अन्य के सुगुण से भी जलने वाले, पर विघ्न संतोषी ईर्ष्यालु वाले।
क्रूरता कठोरता निर्दयता वाले, परनिंदा अपमान सहित वाले।।

रूढ़ि परम्परा को ही धर्म मानने वाले, इसी से ही स्वर्ग मोक्ष चाहने वाले।
हिताहित विवेक रहित वाले, दान दया सेवा रहित वाले होऽऽऽ।। हाय रे...(2)...

कार्यकारण परिणाम रहित, अंधविश्वास सह कामना युक्त।
सत्ता संपत्ति व प्रसिद्धि चाह, इसी हेतु धार्मिक क्रिया युक्त।।

स्व-मत भिन्न अन्य सभी को, पापी व अधर्मी मानने वाले।
उन्हें कष्ट देना भी चाहते तुम, उन्हें मारकर धार्मिक बनते होऽऽऽ।। हाय रे...(3)...

धर्म तो सत्य समता व पवित्रता, दान दया सेवा व सहिष्णुता।
स्व-पर विश्व कल्याणमय धर्म, आत्म विकास व शांतिमय धर्म।।

इनसे युक्त तुम पालो हे! धर्म, जिससे मिलेगा अनंत शर्म (सुख)।
स्व-पर हित से प्रारंभ धर्म, 'कनक' सेवे आध्यात्म धर्म होऽऽऽ।। हाय रे...(4)...

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 14.06.2016, रात्रि 10.32

अनावश्यक पाप करते हैं जीव

(पेट से ज्यादा खोटे भाव से पाप करते हैं जीव)

(तर्ज : छोटी-छोटी गैया....., यमुना किनारे....., इक परदेसी तेरा दिल.....)

अनावश्यक पाप जीव करते अधिक, जीवन निर्वाह से भी पाप अधिक।
राग द्वेष मोह परचिंता निंदा से, आर्त्तरौद्र ध्यान, संक्लेश भाव से।। (स्थाई)

तंदुलमत्स्य व महामत्स्य के सम, दोनों ही जाते हैं नरक सप्तम।
महामत्स्य खाता है अरबों जीव, तंदुलमत्स्य खाता (महामत्स्य) कान का।। (1)

श्रीपाल बना कुष्ठी साधु को कुष्ठी कहने से, सात सौ सैनिक कुष्ठी बने अनुमोदना से।
साठ हजार जल मरे साधु निंदा से, सेठ बना मेंढ़क आर्त्तध्यान से।। (2)

पेट से ज्यादा पापी होता है कुभाव, आवश्यकता बिना अनर्थ दण्ड के भाव।
घाती कर्म बंधते दूषित भावों से, अंतराय बंधे विघ्न डालने से।। (3)

मांसभक्षी सिंह जाता है पंचम नरक, खोटा भावी (भोगासक्त) चक्री जाता सप्तम नरक।
खोटा भावी (भोगासक्त) महिलाएँ जाती षष्टम नरक, शाकाहारी होते चक्री
(चक्रवर्ती) भी (जो) भोगासक्त।। (4)

तीर्थंकर आचार्य साधु बुद्ध ईसा को, गलत मानते गाली देते हत्या तक करते।
अनावश्यक खोटे विचार कथन कार्य से, घोरातिघोर पाप से दुःखों को भोगते।। (5)

संक्लेश परिणाम ही है पाप बंध के कारण, इसी से युक्त नवकोटि से होते पाप कर्म।
भाव विशुद्धि ही मुख्यतः मोक्ष के कारण, भाव विशुद्धि हेतु 'कनक' प्रयत्नवान्।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 16.06.2016, प्रातः 5.41

(ग.पु. कॉलोनी में स्वाध्याय, आहारदान, ज्ञानदान, वैयावृत्ति आदि के कारण से यहाँ के लोगों द्वारा इन लाभ को प्राप्त करने के लिए हमें बार-बार अनुरोध करके रूकवाये किन्तु अन्य प्रदेश में, किसी ने, रूकने संबंधी गलत प्रश्न करने पर यह कविता बनी। इस कविता के द्वारा मैं कॉलोनी वालों की भावनाओं का सम्मान व निन्दकों को निन्दा न करने की शिक्षाएँ दे रहा हूँ।)

संसार भ्रमण के मूल कारण अशुद्ध भाव को मैं त्यागूँ

(घाती कर्म रूपी महान् पाप बंधता है संक्लेश परिणाम से, असाता वेदनीय नहीं है महान् पाप, असाता (पाप प्रकृतियाँ) का उदय केवली में भी होता है। स्थूल पञ्च पाप-सप्त व्यसन आदि सेवन बिना भी निगोदिया जीव आठों कर्म को बाँधते हैं।)

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा....., कोई मतवाला.....)

जिया रे! अशुद्ध भाव त्यागोऽऽऽ
अशुद्ध भाव ही संसार कारणऽऽऽ इसी के हेतु न आनुषंगिक पापऽऽऽ...(ध्रुव)...
अशुद्ध भाव है राग द्वेष मोहऽऽऽ जिससे बंधते हैं घाती कर्मऽऽऽ
घाती कर्म से आत्म स्वभाव नशतेऽऽऽ अघाती से न नशे आत्मधर्मऽऽऽ

अघाती युक्त होते (केवली) भगवन्ऽऽऽ जिया...(1)...

घाती कर्म ही है महान् पाप कर्मऽऽऽ जिससे नशते अनुजीवी गुणऽऽऽ
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य गुणऽऽऽ जीव के हैं अनुजीवी गुणऽऽऽ
सूक्ष्मत्व आदि प्रतिजीवी गुणऽऽऽ जिया...(2)...

मोह कषाय युक्त भाव है अशुद्ध भावऽऽऽ इससे बंधते घाती कर्मऽऽऽ
केवली श्रुत संघ धर्मदेव की निन्दा सेऽऽऽ बंधता मिथ्यात्व महापाप कर्मऽऽऽ
संसार भ्रमण हेतु मुख्य कर्मऽऽऽ जिया...(3)...

ज्ञान दर्शन में ईर्ष्या भाव सेऽऽऽ या उनमें वञ्चना करने सेऽऽऽ
मात्सर्य अंतराय आसादना सेऽऽऽ ज्ञान-ज्ञानी में दोषारोपण सेऽऽऽ
बंधे ज्ञान-दर्शनावरण कर्मऽऽऽ जिया...(4)...

दान लाभ भोग-उपभोग मेंऽऽऽ वीर्य में करे जो विघ्न उत्पन्नऽऽऽ
उससे अंतराय कर्मबंध होताऽऽऽ जिससे होता सभी में विघ्नऽऽऽ
आत्म विकास में व्यवधानऽऽऽ जिया...(5)...

स्थूल पाँचों पाप सप्त व्यसन रिक्तऽऽऽ निगोदिया सभी जीव होतेऽऽऽ
किन्तु भाव अशुद्धि के कारणऽऽऽ घाती-अघाती कर्म बाँधतेऽऽऽ
नारकी से भी ये अति पापीऽऽऽ जिया...(6)...

अघाती-असाता के उदय से भीऽऽऽ अरिहंत होते अनंत ज्ञानीऽऽऽ
अनंत दर्शन सुख वीर्य सहितऽऽऽ अवश्य होते मोक्षगामीऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-आनंद धनीऽऽऽ जिया...(7)...

राग द्वेष मोह ईर्ष्या तृष्णा घृणाऽऽऽ निन्दा अपमान संक्लेशऽऽऽ
इन अशुद्ध भावों को क्षीण करोऽऽऽ अन्य होंगे सरल-सहजऽऽऽ
'कनक' समता-साधक बनऽऽऽ जिया...(8)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 16.05.2016, रात्रि 9.20

(अधिकांश जन सच्चे देव-शास्त्र-गुरु, गुण-गुणी की पूजा आराधना सेवा के परिवर्तन में निन्दा अपमान आदि करके महान् पाप करते हैं, उन्हें इन पापों से दूर करने हेतु यह कविता बनी।)

संदर्भ-

पूज्यपाद स्वामी ने भी समाधि तंत्र में प्रतिपादन निम्न प्रकार किया है-

स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम्।

वर्त्तते विभ्रमः पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः।। (11)

आत्मा को न जानने वाले बहिरात्मा पुरुषों के शरीर में अपने तथा परायेपन के विचार से पुत्र-स्त्री आदि सम्बन्धित भ्रम होता है।

अविद्यासंज्ञितस्तस्मात्संस्कारो जायते दृढ़ः।

येन लोकोऽङ्गमेव स्वं पुनरप्यभिमन्यते।। (12)

उस ही मिथ्याश्रद्धान से बहिरात्मा जीवों के अविद्या या अज्ञान नामक संस्कार या धारणा अथवा भावना दृढ़ मजबूत हो जाती है। जिस संस्कार या भावना से संसारी-स्त्री पुरुष शरीर को ही फिर से कालान्तर में भी, अन्य भव में भी अपना मानता रहता है।

देहे स्वबुद्धिरात्मानं युनक्त्येतेन निश्चयात्।

स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद्वियोजयति देहिनम्।। (13)

इस मिथ्या संसार से बहिरात्मा शरीर में अपनी बुद्धि-ज्ञान या अपनेपन की मान्यता से निश्चय से आत्मा को जोड़ता है तथा अपने आत्मा में ही अपने आत्मापन की श्रद्धा-भावना या ज्ञान से अपने आत्मा को उस शरीर से अलग करता है।

देहेष्वात्मधिया जाताः पुत्र भ्रार्यादिकल्पनाः।

सम्पत्तिमात्मनस्ताभिर्मन्यते हा हतं जगत्।। (14)

''शरीर में आत्मबुद्धि के कारण पुत्र, पत्नी आदि की कल्पनाएँ बनावटी झूठी मान्यताएँ हुई हैं। उन कल्पनाओं से अपने पुत्र, पत्नी, आदि को सम्पत्ति रूप बहिरात्मा जीव मानता है। हाय! इस तरह यह संसारी जनता मारी गई-ठगी गई है।''

परत्राहंमतिः स्वस्माच्च्युतो वध्नात्यसंशयम्।। (43)

अपनी आत्मा की श्रद्धा से गिरा हुआ या छूटा हुआ और अपनी आत्मा से भिन्न जड़ में अहम् मान्यता यानि 'मैं शरीर रूप हूँ' ऐसी श्रद्धा और ज्ञान वाला जीव निःसंदेह निश्चय से कर्मबंध से बँधता है।

बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो।

कम्मादपदेसाणं अण्णोणपवेसणम् इदरो।। (32) द्रव्यसंग्रह

जिस चेतन भाव से कर्म बंधता है वह तो भावबंध है, और कर्म तथा आत्मा के प्रदेशों का परस्पर प्रवेशन रूप अर्थात् कर्म और आत्मा के प्रदेशों का एकाकार होने रूप दूसरा द्रव्य बंध हैं।

उवओगमओ जीवो मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि।
पप्पा विविधे विसये जो हि पुणो तेहिं संबंधो।। (175) प्रवचनसार

जो उपयोगमय जीव विविध विषयों को प्राप्त करके मोह करता है, राग करता है, अथवा द्वेष करता है, उनके द्वारा बंध रूप है।

यह जीव निश्चयनय से विशुद्ध ज्ञान दर्शन उपयोग का धारी है तो भी अनादि काल से कर्मबंध की उपाधि के वश से जैसे स्फटिक मणि उपाधि के निमित्त से अन्य भावरूप परिणमति है इसी तरह कर्मकृत औपाधिक भावों से परिणमता हुआ इन्द्रियों के विषयों से रहित परमात्म-स्वरूप की भावना से विपरीत नाना प्रकार पंचेन्द्रियों के विषयरूप पदार्थों को पाकर उनमें राग द्वेष मोह कर लेता है। ऐसा होता हुआ यह जीव राग द्वेष मोह रहित अपने शुद्ध वीतरागमयी परमर्धम को न अनुभवता हुआ इन राग द्वेष मोह भावों के निमित्त से बद्ध होता है। यहाँ पर जो इस जीव के यह राग द्वेष मोह रूप परिणाम हैं सो ही भावबंध है।

भावेण जेण जीवो पेच्छदि जाणादि आगद विसये।
रज्जदि तेणेव पुणो बज्झदि कम्म त्ति उवदेसो।। (176) प्रवचनसार

जीव जिस भाव से विषयागत पदार्थ को देखता है और जानता है उसी से उपरक्त (आसक्त) होता है, और कर्म बँधता है ऐसा उपदेश है।

यह जीव पाँचों इन्द्रियों के जानने में जो इष्ट व अनिष्ट पदार्थ आते हैं उनको जिस परिणाम से निर्विकल्प रूप से देखता है व सविकल्प रूप से जानता है। उसी दर्शन ज्ञानमयी उपयोग से राग करता है, क्योंकि वह आदि मध्य अंत रहित व राग-द्वेषादि रहित चैतन्य ज्योति स्वरूप निज आत्म द्रव्य को न श्रद्धान करता हुआ, न जानता हुआ और समस्त रागादि विकल्पों को छोड़कर नहीं अनुभव करता हुआ वर्तन कर रहा है। इससे ही रागी द्वेषी मोही होकर राग द्वेष मोह कर लेता है। यही भावबंध है। इसी भावबंध के कारण नवीन द्रव्य कर्मों को बाँधता है, ऐसा उपदेश है।

बंध के भेद एवं कारण (सामान्य)

जीव प्रदेश एवं कर्म वर्गणाओं का संश्लेष रूप संबंध को बंध कहते हैं।

इस अपेक्षा बंध एक प्रकार होते हुए भी विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न भेद भी हो जाते हैं। भाव बंध एवं द्रव्य बंध की अपेक्षा बंध दो प्रकार का है-

भाव बंध-मोह, राग, द्वेष आदि जीव के वैभाविक भाव को भाव बंध कहते हैं।

द्रव्य बंध-आत्मा के साथ पूर्व बद्ध कर्म पुद्गल के साथ नवीन पुद्गल कर्म परमाणुओं का बंधना द्रव्य बंध है।

(1) भाव बंध (2) कर्म बंध एवं नौ कर्म बंध अपेक्षा बंध 4 प्रकार का भी है-(1) प्रकृति बंध (2) प्रदेश बंध (3) स्थिति बंध (4) अनुभाग बंध। इनकी अपेक्षा बंध चार प्रकार के हैं। एकेन्छिय से पञ्चेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा बंध पाँच प्रकार के भी हैं। पञ्च स्थावर एवं त्रस काय की अपेक्षा बंध छः प्रकार के भी हैं। इसी प्रकार बंध संख्यात, असंख्यात और अनंत होते हुए भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बंध अधिक प्रसिद्ध हैं इसलिए इन चारों बंधों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

पयडिट्ठिदि अणुभाग प्पदेस भेदादु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडि पदेशा ठिदि अणुभागा कसायदो होति।। (33) द्रव्य संग्रह

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन भेदों से बंध चार प्रकार का है। इनमें योगों से प्रकृति तथा प्रदेशबंध होते हैं और कषायों से स्थिति तथा अनुभाग बंध होते हैं।

सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पुग्गला काया।
पविसंति जहाजोग्गं चिट्ठंति हि जंति बज्झंति।। (गा. 178 प्रवचनसार)

वह आत्मा सप्रदेशी है उन प्रदेशों में पुद्गल समूह प्रवेश करते हैं यथायोग्य रहते हैं निकलते हैं और बंधते हैं।

मन, वचन, काय वर्गणा में आलम्बन से और वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम से जो आत्मा के प्रदेशों में सकम्पना (परिस्पन्दन) होता है उसको योग कहते हैं। उस योग के अनुसार, कर्म वर्गणा योग्य पुद्गल कर्म आस्रव रूप होकर अपनी स्थिति पर्यंत ठहरते हैं तथा अपने उदय काल को पाकर फल देकर खिर जाते हैं तथा केवल ज्ञानादि अनंत चतुष्टय की प्रगटता रूप मोक्ष से प्रतिकूल बंध के कारण रागादिकों का निमित्त पाकर फिर भी द्रव्यबंध रूप से बंध जाते हैं। इससे यह बताया गया है कि, रागादि परिणाम ही द्रव्य बंध का कारण है अथवा इस गाथा से दूसरा अर्थ यह कर

सकते हैं कि 'पविसंति''' शब्द से प्रदेश बंध 'चिट्ठंति' से स्थिति, बंध ''जंति'' से फल देकर जाते हुए अनुभाग बंध और ''बद्धयंते'' से प्रकृतिबंध ऐसे चार प्रकार बंध को समझना।

फासेहिं पुग्गलाणं बंधो जीवस्स रागमादिहि।

अण्णोण्णमवगाहो पुग्गल जीवप्पगो भणिदो।। (177)

स्पर्शों के साथ पुद्गलों का बंध, रागादि के साथ जीव का बंध और अन्योन्य अवगाह पुद्गल जीवात्मक बंध कहा गया है।

जीव के रागादि भावों के निमित्त से नवीन पौद्गलिक द्रव्य कर्मों का पूर्व में जीव के साथ बंधे हुए पौद्गलिक द्रव्य कर्मों के साथ अपने यथायोग्य चिकने रूखे गुण रूप उपादान कारण से जो बंध होता है उसको पुद्गल बंध कहते हैं। वीतराग परम चैतन्य रूप निज आत्म तत्त्व की भावना से शून्य (रहित) जीव का जो रागादि भावों में परिणमन करना सो जीव बंध है। निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञान रहित होने के कारण स्निग्ध-रूक्ष की जगह राग-द्वेष में परिणमन होते हुए जीव का बंध योग्य स्निग्ध-रूक्ष परिणामों में परिणमन होने वाले पुद्गल के साथ जो परस्पर अवगाह रूप बंध है वह जीव पुद्गल का परस्पर बंध है। इस तरह तीन प्रकार बंध का लक्षण जानने योग्य हैं।

बंध के संक्षिप्त कारण बताते हुए कुन्दकुन्द स्वामी पुनः कहते है ''रत्तो बंधदि कम्मं'' अर्थात् रागी जीव कर्म को बाँधता है।

सामान्यतः राग एक प्रकार होते हुए भी उसके अनेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं तब द्रव्यबंध में भेद-प्रभेद हो जाते हैं। यथा-

परिणामादो बंधो परिणामो रागदोस मोह जुदो।

असुहो मोहपदेशो सुहो व असुहो हवदि रागो।।(180)

परिणाम से बंध होता है, वह परिणाम राग, द्वेष, मोह युक्त है। मोह और द्वेष अशुभ है राग शुभ अथवा अशुभ होता है।

''सुहो परिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति भव्वि मण्णेसु।''

पर के प्रति शुभ परिणाम पुण्य है, और अशुभ परिणाम पाप है, ऐसा कहा है।

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्हि असुहम्हि रागदोसजुदो।

तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादि भावेहिं।। (187)

जैसे नवमेघ जल के भूमि संयोग रूप परिणाम के समय अन्य पुद्गल परिणाम स्वयमेव वैचित्र्य को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार आत्मा के शुभाशुभ परिणाम के समय कर्म पुद्गल परिणाम वास्तव में स्वयमेव विचित्रता को प्राप्त होते हैं। वह इस प्रकार है कि-जैसे, जब नया मेघजल भूमि संयोग रूप परिणमित होता है तब अन्य पुद्गल स्वयमेव विचित्रता को प्राप्त हरियाली कुकुरमुत्ता (छत्ता) और इन्द्रगोप (चातुर्मास में उत्पन्न लाल कीड़ा) आदि रूप परिणमित होता है, इसी प्रकार जब यह आत्मा राग-द्वेष के वशीभूत होता हुआ शुभाशुभ भावरूप परिणमित होता है तब अन्य योग द्वारों से प्रविष्ट होते हुए, कर्म पुद्गल स्वयमेव विचित्रता को प्राप्त ज्ञानावरणादि भावरूप परिणमित होते हैं।

इससे (यह निश्चित हुआ कि) कर्मों की विचित्रता (विविधता) का होना पुद्गल स्वभावकृत है, किन्तु आत्मकृत नहीं।

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाणं संकिलेसम्मि।
विवरीदो दु जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं।।
शुभप्रकृतीनां विशुद्धया तीव्रो अशुभानां संक्लेशो।
विपरीतास्तु जघन्यो अनुभागो सर्वप्रकृतीनां।। (187-1)

फल देने की शक्ति विशेष को अनुभाग कहते हैं। तीव्र धर्मानुराग रूप विशुद्ध भाव से सातावेदनीय आदि शुभ कर्म प्रकृतियों का अनुभाग परम अमृत के समान उत्कृष्ट पड़ता है तथा मिथ्यात्व आदि रूप संक्लेश भाव से असाता वेदनीय आदि अशुद्ध प्रकृतियों का अनुभाग हलाहल विष के समान तीव्र पड़ता है तथा जघन्य विशुद्धि से व मध्यम विशुद्धि से शुभ प्रकृतियों का अनुभाग जघन्य या मध्यम पड़ता है अर्थात् गुड़, खाँड, शर्करा रूप पड़ता है। वैसे ही जघन्य या मध्यम संक्लेश से अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग नीम, काँजीर विष रूप जघन्य या मध्यम पड़ता है। इस तरह मूल उत्तर प्रकृतियों से रहित निज परमानंदमयी एक स्वभाव रूप तथा सब प्रकार उपादेय भूत परमात्म द्रव्य से भिन्न और त्यागने योग्य सर्व मूल और उत्तर प्रकृतियों से जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अनुभाग को अर्थात् कर्म के विशेष को जानना चाहिए।

बंध के सामान्य अंतरंग कारण वैभाविक परिणाम होते हुए भी विशेषतः वैभाविक परिणाम के भेद-प्रभेद अनेक होते हैं। जैसे-सामान्य से बंध के कारण, एक भेद स्वरूप वैभाविक परिणाम है। दो भेद स्वरूप राग-द्वेष, तीन भेद स्वरूप राग-

द्वेष-मोह चार भेद स्वरूप मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय पाँच भेद स्वरूप यथा-

''मिथ्यादर्शनाविरति प्रमाद कषाय योगा बंध हेतवः।'' (तत्त्वार्थ सूत्र अष्ठमोध्याय)

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बंध के कारण हैं।

पूर्वाचार्यों ने कहीं-कहीं विवक्षा भेद से विशेष को सामान्य में गर्भित करके या सामान्य को विशेष में गर्भित करके अनेकांत पद्धति से केवल कषाय को कर्म बंध का कारण कहा है। यथा-

''सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः।'' (त.सू.सू.2)

जीव सकषाय होने से कर्म योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, यही बंध है। यहाँ पर यह नहीं समझना चाहिए कि केवल कषाय ही बंध के लिए कारण है किन्तु मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, राग-द्वेष आदि बंध के लिए कारण नहीं हैं न बंध प्रकरण में अकिञ्चित्कर हैं। परन्तु जहाँ-जहाँ पर केवल कषाय को बंध का कारण बताया गया है वहाँ पर अभेद विवक्षा से कषाय में अन्य कारणों को गर्भित किया गया है अथवा स्थिति एवं अनुभाग बंध का अंतिम कारण कषाय होने से कषाय को अंत दीपक रूप से स्वीकार किया गया है। जैसे-छठवें गुणस्थान को प्रमत्त गुणस्थान कहा जाता है इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य गुणस्थान प्रमत्त नहीं है। अर्थात् पंचम गुणस्थान से नीचे प्रथम गुणस्थान तक प्रमत्त नहीं है किन्तु अप्रमत्त है ऐसा नहीं है। परन्तु छठवें गुणस्थान से पंचम गुणस्थानवर्ती अधिक प्रमत्त हैं, पंचम से चतुर्थ अधिक प्रमत्त हैं, इस प्रकार प्रथम गुणस्थान पर्यंत अधिक-अधिक प्रमत्त है। भट्टाकलंक देव स्वामी ने राजवार्तिक में अष्टम अध्याय के बंध के कारण का प्रतिपादक सूत्र का विशेष व्याख्यान करते हुए मिथ्यात्वादि (मिथ्यादर्शनादि) कारण किस-किस गुणस्थान में कितने-कितने हैं उसका व्याख्यान निम्न प्रकार किया है-

समुदायावयवयोर्बन्धहेतुत्वं वाक्यपरिसमाप्ते वैचित्र्यात्।।31।।

मिथ्यादर्शनादीनां बन्धहेतुत्वं समुदायेऽवयव च वेदितव्यम्। कुत्? वाक्य परिसमाप्ते वैंचित्र्यात्। तत्र मिथ्यादृष्टेः पञ्चापि समुदिताः बन्धहेतवः। सासादनं सम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिनाम विरत्यादयश्चत्वारः। संयतासंयतस्याविरतिमिश्राः प्रमाद कषाय योगाश्च। प्रमत्त संयतस्य प्रमाद कषाय योगाः। अप्रमत्तादीनां चतुर्णा कषाययोगौ। उपशान्तक्षीणकषाय सयोग केवलिनाम् एक एव योगः।

अयोगकेवलिअबन्धहेतुः। तत्र च मिथ्यादर्शनादिविकल्पानां प्रत्येकं बन्धहेतुत्वमवगन्तव्यम्। न हि सर्वाणि मिथ्यादर्शनानि एकस्मिन्नात्मनि युगपत् संभवन्ति नापि हिंसादय सर्वे परिणामाः। (तत्त्वार्थ वा.अ.8 पृ.445)

वाक्य की परिसमाप्ति की विचित्रता होने से समुदाय और अवयव दोनों ही बंध के कारण हैं। अर्थात् मिथ्यादर्शन आदि समुदित और पृथक्-पृथक् भी बंध के हेतु होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। क्योंकि वाक्य की परिसमाप्ति अनेक प्रकार से देखी जाती है। उनमें मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये चार बंध के कारण हैं। संयतासंयत के अविरति मिश्र प्रमाद, कषाय और योग ये चार बंध के कारण हैं। प्रमत्त संयत के प्रमाद, कषाय और योग ये तीन बंध के कारण हैं। क्षीणकषाय, उपशांतकषाय और सयोगी केवली के बंध का कारण केवल एक योग है। अयोग केवली के बंध के हेतु नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादर्शन के पाँच भेद, अविरति के 12 भेद आदि जितने भेद-प्रभेद हैं उन सभी भेदों को बंध का कारण समझना चाहिए। अर्थात् सभी बंध के हेतु होते हैं, क्योंकि मिथ्यादर्शनादि के सभी भेद एक आत्मा में एक साथ नहीं हो सकते हैं। अर्थात् पन्द्रह योगों में से एक समय में एक योग, पाँच मिथ्यात्वों में एक मिथ्यात्व अविरति में से एक स्थान में 7 अविरति होती हैं, इत्यादि।

कर्म सिद्धांत को प्रायः प्रत्येक धर्म, दर्शन के द्वारा स्वीकार करने के कारण प्रायः प्रत्येक धार्मिक ग्रंथ में कर्म का वर्णन यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध ग्रंथ गीता में भाव कर्म का वर्णन करते हुए नारायण श्रीकृष्ण ने निम्न प्रकार कहा है-

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपाजयते।
संगात्यसंजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।62।।
क्रोधाद्भवति संमोह संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।63।। (अ.3)

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष का इन विषयों में संग बढ़ जाता है, फिर इस संग से यह वासना उत्पन्न होती है कि हमको काम (अर्थात् वह विषय) चाहिए और (इस काम तृप्ति होने में विघ्न होने से) उस काम से ही क्रोध स्मृति क्रम, स्मृति भ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से पुरुष का सर्वस्व नाश हो जाता है।

सव्व जीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं।

सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं।।18।। (उत्तराध्ययन सूत्र पृ.359)

सभी जीवों के लिए संग्रह-बद्ध करने योग्य कर्म पुद्गल छहों दिशाओं में आत्मा से स्पष्ट-अवगाहित सभी आकाश प्रदेशों में हैं। वे सभी कर्म पुद्गल बंध के समय आत्मा के सभी प्रदेशों के साथ बद्ध होते हैं।

नवकोटि से पाप करने वाले सच्चे धार्मिक से घृणा करते

(तर्ज : छोटी-छोटी गैया.....)

पापी जो (ही) होते पाप ही करते, पाप-पापी की ही प्रशंसा करते।
धर्म व धर्मी की वे निंदा ही करते, उनका समर्थन भी पापी ही करते।। (1)

शादी भी करते व शादी भी कराते, भोग भी भोगते अनुमोदना करते।
शादी के लिए उत्सव भी मनाते, ज्ञानी-वैरागी की वे निंदा (ही) करते।। (2)

धनी भी बनते व धनी को मानते, धन के लिए बहु पाप ही करते।
परिग्रह हेतु आनंद भी मनाते, निस्पृह साधु की भी निंदा करते।। (3)

निंद्य भी होते निंदा भी करते, गुण व गुणी से विद्वेष करते।
अहंकारी होते दंभ का प्रदर्शन करते, स्वाभिमानी ''सोऽहं'' अहं को दंभ मानते।। (4)

सेठ साहूकार राजा-महाराजा को, आदर सत्कार बहुमान भी देते।
वे ही जब विरक्त वैरागी साधु बनते, निंदा-अपमान व उन्हें कष्ट भी देते।। (5)

रूढ़ी को मानते व प्रतीक को पूजते, स्वयं को ज्येष्ठ-श्रेष्ठ धार्मिक दिखाते।
जीवन्त धर्ममय साधु-सज्जनों को, ढोंगी पाखण्डी व अधर्मी मानते।। (6)

बगुला व जौंक मच्छर सम वे होते, मंथरा शकुनी सम व्यवहार करते।
इनसे भिन्न आध्यात्मिक संत होते, गाय व मधुप सम वे व्यवहार करते।। (7)

राग द्वेष मोह युक्त होते दुर्जन, सत्य-समता युक्त होते श्रमण।
दुर्जनता त्यागो सत्य-समता वरो, 'कनकनन्दी' चाहे आत्म सुधार करो।। (8)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 17.06.2016, मध्याह्न 12.38

स्व-अमूर्तिक आत्मा का परिज्ञान होता है अनुभव से

(किन्तु आचार्य देव भी आत्मा के ज्ञान हेतु देते हैं- भौतिक उदाहरण-क्यों?)

(चाल : शत-शत वंदन.....)

स्व-अमूर्तिक आत्मा का तो, परिज्ञान होता है अनुभव से।
किन्तु उसे आचार्य भी समझाते हैं, भौतिक उदाहरणों से।। (1)

अनादि काल से जीव बंधा हुआ है, भौतिक कर्मों से।
जिसके कारण संसारी जीव प्रतीत होता भौतिक मय से/(में)।। (2)

मोहनीय कर्म के कारण न कर पाता है स्व-शुद्धात्मा दर्शन।
सत्य को असत्य असत्य को सत्य रूप में दर्शन/(श्रद्धान)।। (3)

इसके साथ ज्ञानावरणीय कर्म उदय से नहीं होता है उत्कृष्ट ज्ञान।
चारित्र मोहनीय कर्म उदय से जीव नहीं कर पाता आत्मानुचर/(आत्मानुभवन)।। (4)

आहार-भय-मैथुन-परिग्रह संज्ञा के, कारण जीव होता है मूर्च्छित।
जिसके कारण जीव स्व-शुद्धात्मा का, नहीं कर पाता है परिज्ञान।। (5)

इन सब कारणों से जीव भौतिकता से, तो होता है सुपरिचित।
शरीर-इन्द्रिय सत्ता-संपत्ति, भोगोपभोगों से होता है सुपरिचित।। (6)

इन सब कारणों से अमूर्तिक स्व-शुद्धात्मा का न कर पाता परिज्ञान।
अतः आचार्य स्व-शुद्धात्मा परिज्ञान हेतु देते भौतिक उदाहरण।। (7)

यथा अपरिचित क्षेत्र/(देश) के मार्गदर्शन, हेतु होता नक्शा सहायक।
तथाहि दिशा-निर्देश हेतु होता कम्पास भी उदासीन सहायक।। (8)

किन्तु नक्शा ही नहीं होता है यथार्थ से भौगोलिक सही क्षेत्र/(देश)।
तथाहि भौतिक कम्पास भी नहीं होता है अमूर्तिक सही दिशा।। (9)

निश्चित क्षेत्र में पहुँचने पर नक्शा कम्पास नहीं होता आवश्यक।
तथाहि स्व-शुद्धात्मा के अनुभव होने पर उदाहरण न आवश्यक।। (10)

स्व-शुद्धात्मा तो केवल स्व-अनुभव से ही होता है परिज्ञान।
इन्द्रिय-यंत्र-उदाहरण आदि, नहीं होते हैं अनुभव सम।। (11)

भले भौतिक ज्ञान हेतु इन्द्रिय-यंत्र व भौतिक साक्ष्य उपयोगी।
किन्तु स्व-शुद्धात्मा परिज्ञान हेतु स्व-अनुभव ही उपयोगी।। (12)

इसी हेतु ही तीर्थंकर साधु भी, साधना करते हैं बहुकाल।
अनुभव द्वारा आत्म-विशुद्धि से, कर्म क्षय से बनते है शुद्ध-बुद्ध।। (13)

अतः चाहिए निस्पृह निराडम्बर, समता शांति से ज्ञान ध्यान।
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी' निस्पृह, रूप से करता है ज्ञान-ध्यान।। (14)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 22.06.2016, मध्याह्न 2.20

(अधिकांश जीव स्व-शुद्धात्मा को नहीं जान पाते हैं-इसकी जिज्ञासा के उत्तर में यह कविता बनी।)

स्व-पर गुण-दोषों से शिक्षा लो-आगे बढ़ो

(चाल : दुनिया में रहना है तो.....)

स्व-पर गुण-दोषों से शिक्षा लो प्यारे!...दोष त्यागो गुण बढ़ाओ आगे बढ़ो प्यारे!...
कमल अनल तथा गाय सूर्य सम...निर्लिप्त गुणग्राही प्रकाशमान बनो...(स्थायी)...

पंकज पंक में भी उत्पन्न होकर...विकसित होता है निर्लिप्त होकर...
प्रखर सूर्य किरणों से होता प्रफुल्लित...तथाहि दुर्गुण-दुर्गुणी में हो विकसित...

अनल ईंधन को जलाकर बनती प्रखर...ऊर्ध्वगामी तमहर व पाचक पावक...
तथाहि (तू) दोष जलाकर बनो ऊर्ध्वगामी...प्रकाशमान-पावन-ज्ञानी व ध्यानी...

गाय खाती घास-फूस देती है दूध...सुमधुर स्निग्ध व बल-बुद्धिकर...
तथाहि (तू) निस्सार को भी सारभूत कर...समता शांतिमय बनो धीर मधुर...

सूर्य सम तेजोमय-प्रखर भी बन...स्व-पथ में अविचल आगे बढ़ चल...
मल दोष त्याग कर गुण जल ही गहो...जहाँ भी रहो वहाँ से प्रकाश फैलाओ...

तथाहि मधुप दीप नदी वृक्ष सम...बनो हे! वरेण्य श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-पावन...
दृष्टांत-दृाष्टांत स्वयं ही तू बन...अन्य के दोष-दुर्गुणों से अप्रभावी बन...

दोषी-दुर्गुणी से स्व की तुलना न कर...महान् से महान् बनने का पुरुषार्थ कर...
संख्यात से असंख्यात व अनंत गुणी बन...'कनक' तू शुद्ध-बुद्ध-आनंद-कंद बन...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 19.06.2016, प्रातः 9.35

न लोकाः पारमार्थिक

(लौकिक से परे आध्यात्मिक)

(चाल : दुनिया में रहना है तो....., सायोनारा....., तुम दिल की.....)

लोकानुगतिक से चलते लोग...नहीं चलते पारमार्थिक...
भेड़-भेड़िया चाल चलते लोग...नहीं चलते गौ-हंस के सम...(ध्रुव)...

गर्व तो करते..न गौरव करते...गौरव योग्य भाव न काम करते...
दिखावा करते..दर्शन नहीं करते...आत्मदर्शन न सत्यदर्शन करते...

पर दोष देखते..निन्दा करते...स्व-पर दोषों से शिक्षा न गहते...
प्रशंसा चाहते..प्रशंसा न करते...प्रशंसनीय भाव-काम न करते...(1)...

ख्याति-पूजा-लाभ सदा चाहते...समता शांति संतुष्टि नहीं सेवते...
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि चाहते...दया-दान सेवादि नहीं करते...

अहंकार-ममकार सदा करते...स्वाभिमान-सोऽहं भाव नहीं जानते...
उदार-सहिष्णु न पावन होते...अष्ट मद से स्वयं को श्रेष्ठ बताते...(2)...

दिखावा-आडम्बर का धर्म करते...संकीर्ण-कट्टर व स्वार्थी होते...
सत्य निष्ठा-शुचिता रहित होते...श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-धार्मिक स्वयं को जताते...

परस्पर भेद-भाव वैरत्व करते...विश्व शांति का नारा लगाते...
गोमुख व्याघ्र सम काम करते...बगुला भगत सम भाव रखते...(3)...

आधुनिक भाव-व्यवहार न करते...आधुनिक ज्ञान-विज्ञान रहित होते...
फैशन-व्यसनों में भेड़चाल चलते...विदूषक समान स्वांग रचते...

संस्कार-सदाचार रहित होते...साक्षर-राक्षस सम चाल चलते...
सदाचारी शालीन सौम्य न होते...नीली लोमड़ी सम व्यवहार करते...(4)...

मृगमरीचिका व गपोड़शंख सम...दूर से ही लगे अविचारित रम्य...
इससे परे बने पारमार्थिक लोग...इसी हेतु काव्य बनाये 'कनक'...(5)...

आसपुर, दिनांक 03.07.2016, मध्याह्न 12.48

जीवों के लिए दोष करना व पर दोष जानना सरल क्यों?

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

अनादि काल से अनंत भवों में, दोष करते हैं जीव अनंत।
इसलिए दोष करना सरल है, अन्य के दोष भी जानना सरल।।

चोर ठग व हत्यारा बलात्कारी, जानते हैं स्वप्रकृति व प्रवृत्ति।
ऐसी प्रकृति व प्रवृत्ति वालों को, जानते सरलता से जो हैं स्व-अनुभूति।।

एक समान रोगी स्व-अनुभव से, अनुमान से जानता है अन्य रोगी को।
प्रसव पीड़ा को एक माता जानती है, अन्य माता की भी प्रसव पीड़ा को।।

शिकारी जानता है शिकार की कमजोरी, जिससे शिकार का करता शिकार।
चोर जानता है चोरी के उपायों को, जिससे बनता है वह सफल चोर।।

मन जाने पाप व माँ जाने बाप, यह यथार्थ से मनोवैज्ञानिक सत्य।
स्व-प्रजाति को जानते स्व-प्रजाति जीव, समगुण गुणी जानते वैसे जो जीव।।

प्यासा जाने हैं प्यासे की पीड़ा, भूखा जाने हैं भूखे की पीड़ा।
संतोषी जाने संतोषी का सुख, वीतरागी जाने वीतरागी का सुख।।

सर्वज्ञ जानते हैं सर्वज्ञ का ज्ञान, अल्पज्ञ न जान पाते हैं सर्वज्ञ को।
स्व-पर दोष से दोष दूर करना, 'कनकनंदी' की गुणग्राही भावना।।

आसपुर, दिनांक 29.06.2016, अपराह्न 5.33

कब, कौन कानून को हाथ में ले सकता है!?

(कानून को हाथ में लेने योग्य परिस्थिति)

(श्रावक योग्य हिंसा-अहिंसा (1) संकल्पी हिंसा (2) आरम्भी हिंसा (3) उद्योगी हिंसा (4) विरोधी हिंसा का स्वरूप)

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

हिंसा-अहिंसा का स्वरूप जानो, निश्चय-व्यवहार दोनों पहचानो।
दूषित-परिणाम निश्चय हिंसा, द्रव्य-प्राण-वियोग व्यवहार हिंसा।।

दूषित-परिणाम निश्चय हिंसा, द्रव्य हिंसा हो या नहीं भी हो।

राग-द्वेष मोह होते (है) दूषित परिणाम, क्रोध, मान माया लोभ परिणाम।।

हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह, पाँचों ही पाप हिंसा में गर्भित।
सप्त व्यसन भी है निश्चित हिंसा, नव नौ कषाय भी है निश्चित हिंसा।।

अणुव्रतधारी होते हैं श्रावक, संकल्पी हिंसा से होते हैं विरक्त।
संकल्पपूर्वक न मारते त्रस जीव, आरंभ उद्योग विरोध में मरते जीव।।

दूषित परिणाम (संकल्प) से न मारते जीव, आरंभ आदि से मरते हैं जीव।
गृहकार्य से होती है आरंभी हिंसा, व्यापार आदि से होती है उद्योगी हिंसा।।

आत्मरक्षा व राष्ट्र परिवार रक्षा, देव शास्त्र धर्म गुरु की रक्षा।
असहाय बालक व स्त्री की रक्षा, इसी हेतु होती विरोधी हिंसा।।

राम पाण्डव तथा चंद्रगुप्त मौर्य, चामुण्डराय व राजा पहुपपाल।
विरोधी हिंसा के प्रसिद्ध दृष्टांत, स्वतंत्रता हेतु जो होते संग्राम।।

विदेशी आक्रांताओं के साथ (जो) संग्राम, दास प्रथा दूर हेतु होते (जो) संग्राम।
काला-गोरा भेद-भाव दूर हेतु संग्राम, पशु व स्त्री समान अधिकार संग्राम।।

योग्य न्यायाधीश का दण्ड प्रदान, आचार्य द्वारा प्रायश्चित्त प्रदान।
ध्रुव प्रहलाद नचिकेता प्रकरण, न्यायोचित माँग हेतु असहयोग आंदोलन।।

सामर्थ्य अनुसार विरोध करना, यह नहीं है कानून हाथ में लेना।
अन्यथा अन्याय भी होगा सर्वत्र, कनक को मान्य आगम प्रणीत।।

विरोधी हिंसा आत्मरक्षा निमित्त, न्याय सदाचार आदि रक्षा निमित्त।
दूषित परिणाम न होता है विशेष, अतएव इसी से न बंधता पाप विशेष।।

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 18.06.2016, रात्रि 9.17 से 10.50 तक

संदर्भ-

शीर्ष अदालत ने बढ़ाया आत्मरक्षा का दायरा, राजस्थान हाइकोर्ट का फैसला पलटा

परिवार पर हमला हो तो कानून हाथ में ले सकते हैं : सुप्रीम कोर्ट

सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि यदि परिवार पर कोई हमला करता है, तो बचाव में

पीड़ित कानून हाथ में ले सकता है। कोर्ट ने आत्मरक्षा के अधिकार के व्यापक दायरे की व्याख्या करते हुए यह बात कही। यह फैसला उन दो व्यक्तियों के मामले में आया है, जिन्हें अपने पड़ोसियों पर हमले के आरोप में ट्रायल कोर्ट ने दोषी ठहराया था। बाद में राजस्थान हाईकोर्ट ने दोषियों को दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई थी। लेकिन सुप्रीम कोर्ट में जस्टिस दीपक मिश्रा और जस्टिस शिव कीर्ति सिंह ने राजस्थान हाईकोर्ट का फैसला पलटते हुए दोनों आरोपियों को बरी कर दिया। पीठ ने कहा कि मामले से जुड़े तथ्यों में थोड़ी विसंगतियां हैं। यह सही था कि दोनों दोषियों ने अपने पड़ोसियों पर हमले किए थे, लेकिन पुलिस इस बात को पेश करने में नाकाम रही थी कि दोनों ने हमले क्यों किए थे।

सुप्रीम कोर्ट ने कहा

आवेदनकर्ताओं के माता पिता को पीटा जा रहा था। यह एक अहम कारक था। ऐसे में उनका बल प्रयोग करना गलत नहीं था, अभियोजन इसे मजबूती से नहीं रख सका। हमले में एक व्यक्ति की मौत भी हुई, उसका कारण नहीं पता लगाया जा सका। इस कारण से दोनों को दोषी करार दिया गया।

क्या था मामला

दो परिवारों के झगड़े में एक पक्ष ने दोषी करार दिए गए दो लोगों के माता पिता पर कुंद हथियारों से वार किए गए, जिससे उनके पिता घायल हो गए और बाद में मौत हो गई। जब दोनों ने माता पिता पर हमला होते देखा तो उन्होंने बल प्रयोग किया।

हिन्दी भाषा शुद्ध व संवृद्धशाली बने तो कैसे?

(उच्च शिक्षित नगरवासी हिन्दी भाषा भी क्यों नहीं समझते हैं शुद्ध हिन्दी!?)

(चाल : आत्मशक्ति से....., तुम दिल की धड़कन.....)

संस्कृत है जननी भाषा, ओडिया बंगला गुजराती मराठी की।
हिन्दी आसमिया आदि भाषा की, अतः इनमें हो संस्कृत निष्ठा की।।

ओडिया में सबसे है संस्कृत निष्ठा, इसके अनंतर बंगला गुजराती की।
आसमिया व हिन्दी में क्रमशः, न्यून होती गई संस्कृत निष्ठा की।।

क्षेत्र व काल विदेशी आक्रांताओं के, कारण संस्कृत निष्ठा होती गई कमी।

जिसके कारण तत्सम तद्भव शब्द हो गये, कम देशी-विदेशी शब्द वेशी।।

मुगल के कारण हिन्दी भाषा में, ऊर्दू भाषा शब्द हुए अधिक प्रयोग।
प्रेमचन्द के अधिक लेख में, ऊर्दू शब्दों का हुआ अधिक प्रयोग।।

स्वतंत्रता सेनानी महात्मा गाँधी, विनोबा से प्रचलित हुई हिन्दुस्थानी।
सरल सुबोध जन साधारण के प्रयोग, हेतु सरलीकरण हुई हिन्दुस्थानी।।

अंग्रेजीओं के कारण अंग्रेजी शब्दों का, प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है।
बॉलीवुड (सिनेमा) के कारण तो हिन्दी की, शुद्धता में ह्रास हो रहा है।।

हिन्दी अभी हो गई खिचड़ी भाषा, तथा हो गई हिंग्लीशी भाषा।
संस्कृत निष्ठा तो हो रही लोप, हिन्दी बन गई बजारू भाषा।।

'तत्सम' 'तद्भव' शब्दों का कम प्रयोग, पर्यायवाची शब्द भी कम प्रयोग।
असम्यक् शब्दों का करते अधिक प्रयोग, संयुक्ताक्षर शब्द भी कम प्रयोग।।

घटना विषय व चर्चा संवाद आदि के, लिए करते है 'बात' शब्द प्रयोग।
घटना विषय विशेष विशेषण आदि के, हेतु (लिए) करते है 'चीज' शब्द प्रयोग।।

समस्या व्यवधान विघ्न बाधा आदि, हेतु करते है 'चक्कर' शब्द प्रयोग।
अनेक विषय या वस्तु आदि के लिए, करते अयोग्य भी (एक) शब्द प्रयोग।।

यथा दो इन्द्रिय से लेकर उड़ने वाले, विकलत्रय को बोलते 'मच्छर'।
दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पशु तक, को बोलते है 'जनावर'।।

भोजन (जीविका) को बोलते है 'रोटी', चाची मौसी मामी को बोलते 'आंटी'।
चाचा मौसा मामा आदि को बोलते, 'अंकल' अंग्रेजी नकलची।।

तथाहि लोंचा लफड़ा चालू, बदमाश व शैतान मम्मी डैडी।
पुल्लिंग नपुंसकलिंग का प्रयोग, करते विशेषतः स्त्रीलिंग।।

इन सभी कारणों से हिन्दी भाषा, नहीं बन पा रही शुद्ध व संवृद्ध।
अतएव उच्च शिक्षित नगरवासी भी, न समझ पाते हिन्दी भाषा शुद्ध।।

व्याकरण का भी अध्ययन अध्यापन भी, हो रहा है अति कम।
शुद्ध भाषा प्रयोग हेतु 'कनक', होता है सदा प्रयत्नवान।।

आसपुर, दिनांक 30.06.2016, रात्रि 10.09

बहाना एक : समस्याएँ अनेक

(चाल : गंगा तेरी धारा अमृत....., तुम दिल की.....)

बहाना! तेरी माया-शक्ति सर्वत्र फैली जाय।
तेरी माया शक्ति के कारण, हर कार्य विफल हो जाय।। (ध्रुव)

तेरे पर्यायवाची नाम है अनेक, ठगी वंचना झूठ मायाचार।
टालमटुलम दगा धोखा प्रवंचना, असत्य धोखाधड़ी मिथ्याचार।।

तेरे कारण शक्ति-परिस्थिति व साधन सुविधा होने पर भी।
योग्य काम भी न होता समय पर नाना विघ्न उत्पन्न होय।।

तेरे है स्वांग अनेक विध, समय शक्ति साधन के बहाने।
आरोग्य परिस्थिति भाग्य नियति काल निमित्त आदि बहाने।।

इसी से बुद्धि समय शक्ति निष्ठा, आदि का होता है दुरुपयोग।
कार्य योजना कर्त्तव्य निष्ठा सफलता, आदि में आते बाधा विघ्न।।

तव हेतु प्रसिद्ध उदाहरण मंदगामी कछुआ तीव्रगामी खरगोश।
रावण द्वारा स्वर्ग हेतु सीढ़ी बनाना, शेखचिल्ली गपोडशंख।।

तेरी माया से महापुरुष व सफलतम व्यक्ति न होते प्रभावित।
तेरी माया से जो मोहित होते, कभी न होते वे सफल।।

महावीर ने कहा गोतम को 'प्पमायमेव हवदि मरण।'
'अप्पमादहि अभयपद' अतः 'कनक' करे अप्रमत्त वर्तन।।

आसपुर, दिनांक 02.07.2016, मध्याह्न 12.50

हर कार्य को सफल बनाने के उपाय

(क्यों? कैसे? कारण व परिणाम)

(चाल : सायोनारा.....)

कारणों से कार्य उत्पन्न होता, कारण बिन न कार्य होता।
अंतरंग-बहिरंग कारण होते, उपादान निमित्त इसे कहते।।

उपादान होता है मुख्य कारण, निमित्त होता है गौण कारण।

उपादान ही कार्य रूप बनता, निमित्त बिना न कार्य होता।।

कार्य-कारण यह संबंध, निमित्त उपादान संबंध।
कार्य संपादन हेतु यह जानना, इसी के लिए जिज्ञासु बनना।।

क्या-कैसे व निमित्त-उपादान, कारण व परिणाम प्रयोजन।
इन सब हेतु जिज्ञासा विधेय, परिज्ञान सहित पुरुषार्थ विधेय।।

योग्य उपादान-योग्य निमित्त से, सही पद्धति सही पुरुषार्थ से।
विरोधात्मक निमित्त रहित से, कार्य होते सुद्रव्य क्षेत्रादि से।।

यथा वृक्ष हेतु योग्य बीज चाहिए, जलवायु मृदा रश्मि चाहिए।
विरोधी कारणों से भी रक्षा चाहिए, सुयोग्य क्षेत्र कालादि चाहिए।।

इन सबके बिना न होते कार्य, लौकिक से लेकर धार्मिक कार्य।
लौकिक (कार्य) से श्रेष्ठ धार्मिक कार्य, धार्मिक में आत्मविशुद्धि मुख्य।।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त, सनम्र सत्यग्राही समता युक्त।
सरल-सहजता-शुचिता युक्त, धर्म कार्य होते आत्मविशुद्धि युक्त।।

इसी हेतु बाह्य निमित्त चाहिए, सुयोग्य क्षेत्र काल भाव चाहिए।
जिससे आत्मा का होता विकास, 'कनक' इसी हेतु ही करे प्रयास।।

डगार, दिनांक 12.07.2016, पूर्वाह्न 10.12 (विहार में) आहार के पूर्व

श्रेष्ठ संगति से पाऊँ आत्मोपलब्धि

(श्रेष्ठ व नीच संगति के फल)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)
जिया रे! तू श्रेष्ठ संगति करऽऽऽ
श्रेष्ठ संगति से श्रेष्ठ बनो तूऽऽऽ नीच संगति से न नीचऽऽऽ...(ध्रुव)...

श्रेष्ठ बनने का भाव हे! तेराऽऽऽ अतः श्रेष्ठ संगति तू करऽऽऽ
नीच न बनने का भाव तेराऽऽऽ अतः नीच संगति परिहरऽऽऽ
उपादान सह निमित्त तू वरऽऽऽ जिया...(1)...

अग्नि सम्पर्क से जल बने गर्म/(वाष्प)ऽऽऽ बर्फ (शीतल) बने फ्रिज के मध्येऽऽऽ
नीम वृक्ष से बनता कटुक रसऽऽऽ इक्षु से बनता मधुर रसऽऽऽ
निमित्त से उपादान प्रभावितऽऽऽ जिया...(2)...

महान् व्यक्ति में होता महान् लक्ष्यऽऽऽ होता उदार-पावन भावऽऽऽ
अनुभवजन्य विवेक सम्पन्नऽऽऽ समता शांति सत्य से पूर्णऽऽऽ
होते स्व-पर प्रकाशवान्ऽऽऽ जिया...(3)...

दीपक से अंधेरा यथा दूर होताऽऽऽ सुगंधी से फैले परिमलऽऽऽ
चुंबक से यथा लौह बने चुंबकऽऽऽ ईंधन से यथा अनल प्रज्ज्वलितऽऽऽ
श्रेष्ठ से बनो तू श्रेष्ठऽऽऽ जिया...(4)...

दुष्ट दुर्जन व क्षुद्र लक्ष्य पूर्णऽऽऽ संकीर्ण क्रूर व कठोरऽऽऽ
राग दोष मोह ईर्ष्या तृष्णा पूर्णऽऽऽ सत्य समता शांतिहीनऽऽऽ
होते हैं निकृष्ट नराधमऽऽऽ जिया...(5)...

परनिन्दा अपमान वैरत्व पूर्णऽऽऽ दीन-हीन-अहंकार पूर्णऽऽऽ
अनुशासन कर्त्तव्यनिष्ठा शून्यऽऽऽ शुचि सरल सहजता शून्यऽऽऽ
होते है अयोग्य नीच जनऽऽऽ जिया...(6)...

सुद्रव्य क्षेत्र काल सज्जन संगतिऽऽऽ ध्यान-अध्ययन व संतुष्टिऽऽऽ
निस्पृह निराडम्बर समता वृत्तिऽऽऽ इसी से मिले आत्मोपलब्धिऽऽऽ
'कनक' करो (तू) स्वयं में प्रवृत्तिऽऽऽ जिया...(7)...

कराकला (रात्रि विश्राम), दिनांक 11.07.2016, रात्रि 10.49

संदर्भ-

जाड्य धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्य
मानोन्नर्ति दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रकाशयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।।205।।

सत्संगति, बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य का सेवन करती है मान की उन्नति करती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रकाशित करती है और कीर्ति को दिशाओं में विस्तृत करती है। कहो, सत्संगति पुरुषों का क्या-क्या नहीं करती है

अर्थात् सब कुछ करती है।।205।।

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्र-स्थितं दृश्यते।
अन्तः सागरशुक्तिसंपुटगतं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संवासतो देहिनाम्।।206।।
महानुभाव-संसर्गः कस्य नोन्नति कारणम्।
गङ्गाप्रविष्टं रथ्याम्बु त्रिदशैरपि वन्द्यते।।207।।

संतप्त लोहे पर पड़े हुए पानी का नाम भी सुनाई नहीं पड़ता वही पानी कमलिनी के पत्ते पर स्थित होकर मोती के समान दिखाई देता है और समुद्र के भीतर सीप के पुट में जाकर मोती बन जाता है। ठीक ही है संगति से ही मनुष्यों के गुण प्रायः अधम, मध्यम और उत्तम हो जाते हैं।।206।।

महान् पुरुषों की संगति किस की उन्नति का कारण नहीं है किन्तु सभी की उन्नति का कारण है क्योंकि गङ्गा में प्रविष्ट हुआ गलियारे का पानी देवों के द्वारा वंदनीय हो जाता है।।207।।

ज्ञानदाता साक्षात् गुरु का विस्मरण महान् पाप

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : कभी तो ये गुरुवर.....)

परम उपकारी गुरु होते हैं, सत्य-तथ्य का जो ज्ञान देते हैं।
शुद्ध-बुद्ध होने का जो पाठ पढ़ाते हैं, निस्पृह-निर्विकारी संत होते हैं।। (1)

जिन-सिद्ध-सूरी-पाठक होते हैं, आध्यात्मिक संत श्रमण होते हैं।
आत्मा-परमात्मा का ज्ञान देते हैं, स्वभाव-उपदेश से ज्ञान देते हैं।। (2)

इनके स्मरण व मनन ध्यान से, सेवा-आराधना प्रार्थना-पूजा से।
सम्यक्दर्शन व ज्ञान मिलते हैं, स्वर्ग से लेकर मोक्ष मिलते हैं।। (3)

साक्षात् गुरु जो जीवित होते हैं, शिक्षा-दीक्षा देकर शिष्यों को तारते हैं।
दोष दूर हेतु जो प्रायश्चित्त देते हैं, अनुशासन से जो आगे बढ़ाते हैं।। (4)

ऐसे गुरु तो प्रमुख होते है, इन्हीं के द्वारा अन्य का ज्ञान होता है।

इनका आदर सत्कार बहुमान, करने को परंपरा व आगम बताते है।। (5)

यह है कृतज्ञता आदर सत्कार, सम्यक् दृष्टि के बाह्य आभ्यान्तर।
नीति-नियम व विनय-श्रद्धा, संघानुशासन व लोकानुज्ञता।। (6)

साक्षात् गुरु से परोक्ष गुरुओं का, ज्ञान-ध्यान व बहुमान सीखते हैं।
इसलिए इनकी पूजा सेवा से, परोक्ष गुरुओं की पूजादि (होती) भाव से।। (7)

इनकी सेवा पूजा जो शिष्य न करे, महान् कृतघ्नी वह बहु पाप करे।
ज्ञानावरणीय आदि घाती कर्म बाँधे, अज्ञानी मोही बनकर संसार में घूमे।। (8)

जिनदत्त सेठ व चोर की कथा से, विशेष परिज्ञान कर सम्यक्त्व कौमुदी से।
इसलिये कथा निम्न में उद्धृत है, 'कनकनन्दी' इसी से बहु शिक्षा गहे।। (9)

डगार (रात्रि विश्राम), दिनांक 12.07.2016, रात्रि 9.46

संदर्भ-

राजा ने कहा-अहो! हे सुभटो? इस चोर को शूली पर चढ़ा दो। तदनन्तर राजा की आज्ञा पाकर वे सुभट उस चोर को लाठी तथा मुक्के आदि से पीटकर तथा गधे पर चढ़ाकर शूली की ओर ले चले। मार्ग में राजा के किङ्करों के द्वारा अनेक प्रकार से विडम्बना को प्राप्त हुए उस चोर को देखकर लोग परस्पर में कह रहे थे-इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हुआ कौन मनुष्य नष्ट नहीं होता?

कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग भृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च।।191।।
सुवर्णमेकं ग्राममेकं भूमेरप्येकमङ्गलम्।
हरन्नरकमाप्नोति यावदाभूमि-संप्लवः।।192।।

अत्रावसरे कैश्चित्परस्परं भणितम्-अहो एक व्यसनाभिभूतौ मनुष्यो नियमेन म्रियते किं पुनः सप्त व्यसनाभिभूतः?

द्यूताद्धर्मसुतः पलादिह वको मद्याद्यदोर्नन्दना-
श्चारुः कामितया मृगान्तकतया स ब्रह्मदत्तो नृपः।
चौर्यत्वाच्छिवभूतिरन्यवनितादोषादृशास्यो हठा-
देकैकव्यसनोद्धता इति जना सर्वैर्न को नश्यति।।193।।

ततश्चौरो नगरमध्ये भ्रामयित्वा राजादेशेन शूलोपरि निक्षिप्तः। राज्ञा चतुर्दिक्षु प्रच्छन्न वृत्या।

हरिण, हाथी, शलभ, भ्रमर और मछली ये पाँच, स्पर्शनादि पाँच इन्द्रियों में से एक-एक इन्द्रिय के द्वारा प्रमादी होकर नष्ट हुए हैं फिर जो पाँचों इन्द्रियों द्वारा पाँचों विषयों का सेवन करता है वह क्यों न नष्ट हो? अवश्य ही नष्ट होता है।।191।।

जो एक सुवर्ण, एक ग्राम अथवा पृथ्वी का एक अंगुल भी बिना दिये हरण करता है वह जब तक पृथ्वी का नाश नहीं होता-प्रलय नहीं पड़ता तब तक नरक को प्राप्त होता है।।192।।

इसी अवसर पर किन्हीं लोगों ने परस्पर कहा कि जब एक व्यसन से दबा हुआ मनुष्य नियम से मृत्यु को प्राप्त होता है तब जो सातों व्यसनों से दबा हुआ है उसका क्या कहना है?

जुआ से युधिष्ठिर, माँस सेवन से वक राजा, मदिरा से यदुपुत्र, वेश्या-सेवन से चारुदत्त, शिकार से ब्रह्मदत्त राजा, चोरी से शिवभूति पुरोहित और पर-स्त्री के दोष से रावण इस प्रकार हठपूर्वक एक-एक व्यसन का सेवन करने वाले लोग नष्ट हुए है फिर जो सभी विषयों से नष्ट हो रहा है वह क्या नष्ट नहीं होगा? अवश्य ही नष्ट होगा।।193।।

तदनन्तर वह चोर नगर के बीच घुमाकर राजा की आज्ञा से शूली पर चढ़ा दिया गया।

किङ्करा धृताः पुनराजादेशेन प्रच्छन्नवृत्त्या विलोकयन्त्येवं-कः पुमाननेन सह वार्तां करोति, य एनं वार्तयिष्यति स राजद्रोही राज्ञा निग्राह्यः, तस्य पार्श्वे चोर्यद्रव्यं शोधनीयमिति परस्परं प्रवदन्ति स्थिताः। अस्मिन् प्रस्तावे जिनदासश्रेष्ठी मां गृहीत्वा वनस्थचैत्यसाधु वन्दनां कृत्वा तस्मिन्मार्गे समागतो यत्र चौरः शूलिकोपरि चटापितः।

अर्हद्दासेन पितरं प्रत्यभाणि-भो तात! किमेतत्? पित्रा निगदितं-चौरोऽयम्। पुत्रेण प्रोक्तम्-कथमेतेनेदं प्राप्तम्? पित्रोक्तम्-भो सुत! पूर्वं यदुपार्जितं तत् कथमुदयं विहाय गच्छति? अथवा पुत्रपौत्रादिषु सत्स्वपि पूर्वकृतंशुभाशुभं कर्म तत्कर्तारमेवाटीकते।

यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सा विन्दन्ति मातरम्।

तथा पुराकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति।।194।।

पातालमाविशतु यातु सुरेन्द्रहर्म्य-
मारोहतु क्षितिधराधिपतिं च मेरुम्।
मन्त्रौषधिप्रहरणैश्च करोतु रक्षां
यद्भावि तद्भवति नात्र विचारहेतुः।।195।।

राजा ने चारों दिशाओं में प्रच्छन्न रूप से अपने किङ्कर रख छोड़े थे। वे किङ्कर राजा की आज्ञा से गुप्त रूप में यह देखते थे कि कौन पुरुष इन चोर के साथ बात करता है। जो पुरुष इससे बात करेगा वह राजद्रोही तथा दण्ड के योग्य होगा। उसके पास चोरी के द्रव्य की तलाशी ली जायेगी...ऐसा लोग कह रहे थे।

इसी अवसर पर जिनदांस सेठ मुझ अर्हद्दास को साथ लेकर वन में स्थित प्रतिमाओं तथा साधुओं की वंदना कर उसी मार्ग से निकले जिस मार्ग में चोर शूली पर चढ़ाया गया था।

अर्हद्दास ने पिता से कहा-हे तात्! यह क्या है? पिता ने कहा-यह चोर है? पुत्र ने कहा-इसने यह अवस्था क्यों प्राप्त की? पिता ने कहा-हे पुत्र! पहले जो उपार्जित किया है वह उदय में आये बिना कैसे जा सकता है। अथवा पुत्र पौत्र आदि के रहते हुए भी पूर्वकृत शुभ-अशुभ कर्म के करने वाले के पास ही पहुँचते हैं।

जिस प्रकार हजारों गायों में बछड़े अपनी माँ के पास पहुँच जाते हैं उसी प्रकार पूर्वकृत कर्म अपने कर्त्ता-करने वाले के पास पहुँच जाते हैं।।194।।

चाहे पाताल में प्रवेश कर जाओ, चाहे स्वर्ग चले जाओ, चाहे गिरिराज सुमेरू पर्वत पर चढ़ जाओ और चाहे मंत्र औषधि तथा शस्त्रों के द्वारा रक्षा कर लो परन्तु जो

एतत् सर्वं चौरेण श्रुत्वा भणितम्-भो श्रेष्ठिन्! तृतीयं दिनं गतं, प्राणा न गच्छन्ति, किं करोमि?

शृगालभक्षितौ पादौ काकैर्जर्जरितं शिरः।
पूर्वंकर्म समायातं साम्प्रतं किं करोम्यहम्।।196।।

भो श्रेष्ठिन्! त्वं कृपासागरः परम धार्मिको महाद्रुमवज्जगदुपकारी, यत् त्वया क्रियते तत सर्वमपि लोकोपकारार्थम्। अतएव पिपासितस्य मम पानीयं पायय।

पुरे च राष्ट्रे गिरी च महीतले महोदधौ वा सुहृदां च सन्निधौ।

नभःस्थले वा वरगर्भ वेश्मनि न मुञ्चति प्राक्तनकर्म सर्वथा।।197।।

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु।

तस्य ज्ञानं च मोक्षश्च किं जटाभस्म चीवरैः।।198।।

होने वाला है वह होता है-इसमें विचार का कोई कारण नहीं है।।195।।

यह सब सुनकर चोर ने कहा-हे सेठजी! तृतीय दिन निकल गया परन्तु प्राण नहीं जाते हैं। क्या करूँ?

शृगालों ने दोनों पैर खा लिए हैं और कौओं ने सिर जर्जर कर दिया है। पूर्व कर्म ऐसा ही आया है इस समय क्या करूँ?।।196।।

हे सेठ जी! तुम दया के सागर, परम धार्मिक और महावृक्ष के समान जगत् के उपकारी हो। आपके द्वारा जो किया जाता है वह सभी लोकोपकार के लिए किया जाता है। इसलिए आप मुझे प्यासे को पानी पिला दीजिये।

पूर्वकृत कर्म, नगर में, देश में, पर्वत पर, भूतल पर, समुद्र में, मित्रों के सन्निधान में, आकाश-तल में और मध्य गृह में सब प्रकार से पीछा नहीं छोड़ता है।।197।।

जिसका चित्त सब जीवों पर दया से द्रवीभूत रहता है उसी को ज्ञान और मोक्ष प्राप्त होता है जटा रखने, भस्म रमाने और चीवर पहनने से क्या होता है?।।198।।

छायामन्यस्य कुर्वन्ति स्वयं तिष्ठन्ति चातपे।

फलन्ति च परार्थेषु नात्महेतोर्महाद्रुमाः।।199।।

परोपकाराय ददाति गौः पयः, परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः।

परोपकाराय वहन्ति नद्यः, परोपकाराय सतां प्रवृत्तिः।।200।।

क्षुद्राः सन्ति सहस्त्रशः स्वभरण-व्यापारमात्रोद्यमाः

स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः।

दुष्पूरोदर-पूरणाय पिबति स्त्रोतः-पतिं वाडवो

जीमूतस्तु निदाघसंभृतजगत्संतापविच्छित्तये।।201।।

भो श्रेष्ठिन्! मन्ये त्वं परोपकारायैव सृष्टः। एवं बहुधा प्रकारैः श्रेष्ठी स्तुतः। एतच्चौर वचनं श्रुत्वापि राज विरुद्धं ज्ञात्वा तथाप्यार्द्रचित्तेन तेन श्रेष्ठिना परोपकाराय भणितम्-रे वत्स! मया द्वादश वर्ष पर्यन्तं गुरुसेवा कृता अद्य प्रसन्नेन गुरुणा मंत्रोपदेशो दत्तः। अद्याहं जलार्थं गच्छामि चेन्मंत्रोऽपि विस्मर्यते,

अतएव न गच्छामि।

बड़े वृक्ष दूसरों को छाया करते हैं और स्वयं घाम में खड़े रहते हैं। वे दूसरों के लिए ही फलते हैं अपने लिए नहीं।।199।।

गाय परोपकार के लिए दूध देती है, वृक्ष परोपकार के लिए फलते हैं, नदियाँ परोपकार के लिए बहती हैं और सत्पुरुषों की प्रवृत्ति परोपकार के लिए होती है।।200।।

मात्र अपना पेट भरने में उद्यम करने वाले क्षुद्र मनुष्य हजारों हैं परन्तु परोपकार करना ही जिसका स्वार्थ है ऐसा सज्जनों में अग्रसर एक-विरला ही होता है। दुःख से भरने योग्य उदर को पूर्ण करने के लिए वडवानल समुद्र को पीता है परन्तु मेघ, गर्मी से परिपूर्ण जगत् का संताप दूर करने के लिए पीता है।।201।।

हे सेठ जो! मैं मानता हूँ कि तुम परोपकार के लिए रचे गये हो। इस तरह अनेक प्रकार से सेठ की स्तुति की। चोर के यह वचन सुनकर यद्यपि सेठ ने कुछ करना राजाज्ञा के विरुद्ध समझा तथापि आर्द्रचित्त से युक्त होने के कारण परोपकार के लिए सेठ ने कहा-हे वत्स! मैंने बारह वर्ष तक गुरु की सेवा की। आज प्रसन्न होकर उन्होंने मंत्र का उपदेश दिया है। यदि इस समय मैं पानी के लिए जाता हूँ तो वह मंत्र भूल जाऊँगा इसलिए नहीं जाता हूँ।

चौरेणोक्तम्-अनेन मन्त्रेण किं साध्यते? श्रेष्ठिना भणितम्-पञ्चनमस्कारनामा मन्त्रोऽयं समस्तं सुखं ददातिं। यथा-

संग्रामसागरकरीन्द्रभुजङ्गसिंह-दुर्व्याधि वारिरिपु बन्धन संभवानि।
चौरग्रहभ्रमनिशाचरशाकिनीनां नश्यन्ति पञ्च परमेष्ठिपदैर्भयानि।।202।।
आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रपततां मोहस्य संमोहनं
पायात्पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता।।203।।
कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तु-शतानि च।
अमुं मन्त्रं समाराध्य तिर्यञ्चोऽपि शिवं गताः।।204।।

चौरेणोक्तम्-यावत्कालपर्यन्तं त्वया जलमानीयते तावत्कालपर्यन्तमिमं मन्त्रमहमुद्घोषयामीति।

चोर ने कहा-इस मंत्र से क्या सिद्ध होता है? सेठ ने कहा-यह पञ्च नमस्कार

नाम का मंत्र सब सुख देता है।

पञ्च परमेष्ठियों के पदों से, संग्राम, समुद्र, गजेन्द्र, सर्प, सिंह, दुष्ट बीमारी, जल, शत्रु और बंधन से होने वाले तथा चोर, ग्रह, भ्रम, राक्षस और शाकनियों से उत्पन्न भय नष्ट हो जतो हैं।।202।।

पञ्चनमस्कार मंत्र के अक्षरों से तन्मय वह आराधना रूपी देवता, देवों की संपत्ति का आकर्षण करती है, मुक्ति लक्ष्मी का वशीकरण करती है, चतुर्गति संबंधी विपत्तियों का उच्चाटन करती है, अपने पापों के साथ द्वेष करती है, दुर्गति की ओर जाने वालों का स्तम्भन करती है-उन्हें रोकती है और मोह का सम्मोहन करती है।।203।।

हजारों पाप करके और सैकड़ों जीवों का घात कर इस मंत्र की आराधना से तिर्यंच भी कल्याण को प्राप्त हुए हैं।।204।।

चोर ने कहा-जब तक आप पानी लाते हैं तब तक मैं इस मंत्र का उच्चारण करता

अतः ममोपदेशं दत्त्वा झटिति जलार्थं गच्छ। श्रेष्ठिनोक्तम्-तथास्तु। इति मन्त्रोपदेशं दत्त्वा मां च त मुक्त्वा स्वयं जलार्थं गतः।

तत एकाग्रचित्तेन पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रमुच्चारयता चौरेण प्राणा विताजताः। पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रमाहत्म्येन स चौरः सौधर्मस्वर्गे षोडशाभरणभूषितोऽनेक परिजन सहितो दवो जातः। श्रेष्ठी कियत्कालं विलम्ब चौरसमीप आगतो जलं गृहीत्वा। अविकारकृताञ्जलिं चौरं दृष्ट्ना श्रेष्ठिनाऽभाणि-अहो! उत्तमसमाधिनास स्वर्गं गतः। ततः पुत्रेणोक्तम्-भो तात! सत्संगतिः कस्य पापं न हरति, अपि तु सर्वस्यापि।

जाड्य धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रकाशयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।।205।।

ततः श्रेष्ठिना व्याघुट्य परमगुरुणां वन्दनं कृत्वा वृत्तान्तं निरूप्योपवासं गृहीत्वा च तत्रैव जिनालयं स्थितम्। गुरुणोक्तम्-महत्संसर्गेण कस्योन्नतिर्न भवति।

रहूँगा, इसलिये मुझे उपदेश देकर पानी के लिए शीघ्र जाइये। सेठ ने कहा- 'तथास्तु!' इस प्रकार मंत्र का उपदेश देकर और मुझे वहीं छोड़कर सेठ स्वयं पानी के लिए चला गया।

तदनन्तर एकाग्रचित से पञ्चपरमेष्ठी मंत्र का उच्चारण करते हुए चोर ने प्राण छोड़ दिये। पंचपरमेष्ठी मंत्र के माहात्म्य से वह चोर सौधर्म स्वर्ग में सोलह आभरणों से विभूषित तथा अनेक परिजनों से सहित देव हुआ। जिनदत्त सेठ कुछ समय बाद पानी लेकर चोर के समीप आया तब निर्विकार भाव से हाथ जोड़े चोर को देखकर सेठ ने कहा-अहो! यह तो उत्तम समाधि से स्वर्ग चला गया। पश्चात् पुत्र ने कहा-हे पिताजी! सत्संगति किसका पाप नहीं हरती, किन्तु सभी का हरती है।

सत्संगति, बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य का सेचन करती है मान की उन्नति करती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रकाशित करती है और कीर्ति की दिशाओं में विस्तृत करती है। कहो, सत्संगति पुरुषों का क्या-क्या नहीं करती है अर्थात् सब कुछ करती है।।205।।

तदनन्तर सेठ ने वापिस लौटकर परम गुरुओं की वंदना की, उन्हें सब समाचार कहा और स्वयं उपवास का नियम लेकर उसी जिनालय में स्थित हो गया। गुरु ने कहा-महापुरुषों की संगति से किसकी उन्नति नहीं होती? अर्थात् सभी की होती है।

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्र-स्थितं दृश्यते।
अन्तः सागरशुक्तिसंपुटगतं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संवासतो देहिनाम्।।206।।
महानुभाव-संसर्गः कस्य नोन्नति कारणम्।
गङ्गाप्रविष्टं रथ्याम्बु त्रिदशैरपि वन्द्यते।।207।।

हेरकेण (गुप्तचरेण) राज्ञोऽग्रे निरूपितम् देव! जिनदत्तश्रेष्ठिना चौरेण सह गोष्ठी कृता। राज्ञोक्तम् स राजद्रोही। तत्पार्श्वे चौर द्रव्यं तिष्ठति। एवं कुपित्वा तद्धारणार्थं भटाः प्रेषिताः। यावदेवं वर्तते, तावत्सौधर्म स्वर्गोत्पन्नेन चौरेण भणितम्-पुण्यं विनेयं सर्वसामग्री न प्राप्यते।

मिष्टान्न-पानशयनासनगन्धमाल्य-वस्त्राङ्गनाभरणवाहनयान-गेहाः।
वस्तूनि पूर्वकृतपुण्यविपाककाले-यत्नाद्विनापि पुरुषं समुपाश्रयन्ते।।208।।

संतप्त लोहे पर पड़े हुए पानी का नाम भी सुनाई नहीं पड़ता वही पानी कमलिनी के पत्ते पर स्थित होकर मोती के समान दिखाई देता है और समुद्र के भीतर सीप के पुट में जाकर मोती बन जाता है। ठीक ही है संगति से ही मनुष्यों के गुण प्रायः अधम, मध्यम और उत्तम हो जाते हैं।।206।।

महान् पुरुषों की संगति किस को उन्नति का कारण नहीं है किन्तु सभी की उन्नति का कारण है। क्योंकि गङ्गा में प्रविष्ट हुआ गलियारे का पानी देवों के द्वारा वंदनीय हो जाता है।।207।।

गुप्तचर ने राजा को आगे कहा कि हे देव! जिनदत्त सेठ ने चोर के साथ वार्तालाप किया है। राजा ने कहा-वह राजद्रोही है, उसके पास चोरी का धन है। इस प्रकार क्रूद्ध होकर राजा ने उसे पकड़ने के लिए योद्धा भेजे। जब तक यहाँ ऐसा होता है तब तक सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए चोर ने कहा-पुण्य के बिना यह सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती।

मिष्ठ-अन्नपान, शयन, आसन, गंध, माला, वस्त्र, स्त्री, आभूषण, वाहन, यान और महल आदि सभी वस्तुएँ पूर्वकृत पुण्य के उदयकाल में प्रयत्न के बिना ही पुरुष के पास पहुँच जाती हैं।।208।।

'भव प्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्' इत्यवधिज्ञानेन सर्ववृत्तान्तं ज्ञात्वा भणितम्-स जिनदत्तो मम धर्मोपदेशदाता, तस्योपकारं कदापि न विस्मरामि। अन्यथा मां विहाय कोऽप्यन्यो नास्ति पापी।

यः प्रत्युपकृतिं मर्त्यः प्रकुरुते न मन्दधीः।
दधाति स वृथा जन्म लोके जनविनिन्दितम्।।209।।
अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्योपदेशकम्।
दातारं विस्मरन्पापी किं पुनर्धर्मदेशिनम्।।210।।

इत्येवं सर्वं विचार्य निज गुरुपसर्गं निवारणार्थं दण्डधरो भूत्वा श्रेष्ठि गृहद्वारेऽतिष्ठत्। आगतान् राजकिङ्करान्प्रति भणितं तेन-रे वराकाः! किमर्थमागच्छथ? तैरुक्तम्-रे रङ्क अस्माकं हस्तेन किं मरणं वाञ्छसि? तेनोक्तम्-रे! युष्माभिर्बहुभिः स्थूलैः किं प्रयोजनम्? यस्य तेजो विराजते स एव बलवान्।

'भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्' इस सूत्र के अनुसार कहे हुए अवधिज्ञान के द्वारा समस्त वृत्तांत जानकर उसने कहा कि वह जिनदत्त मुझे धर्मोपदेश को देने वाला है, मैं उसका उपकार कभी नहीं भूलूँगा अन्यथा मुझे छोड़ दूसरा पापी नहीं होगा।

जो मंदबुद्धि मनुष्य प्रत्युपकार नहीं करता है वह लोक में मनुष्यों के द्वारा निन्दित जन्म को व्यर्थ ही धारण करता है।।209।।

जो एक ही अक्षर के उपदेशक अथवा एक ही पदार्थ के दाता को भूल जाता है वह पापी है फिर धर्मोपदेशक को भूलने वाले की क्या बात है।।210।।

इस प्रकार सब कुछ विचार कर वह देव अपने गुरु का उपसर्ग निवारण करने के लिए दण्डधारी होकर श्रेष्ठी के गृह द्वार पर बैठ गया और आये हुए राज सेवकों से उसने कहा-अरे क्षुद्र पुरुषों! किस लिए आये हो? उन्होंने कहा-रे रङ्क! हमारे हाथ से क्या मरना चाहता है? उसेन कहा-अरे! तुम लोग अनेक तथा स्थूल हो सही पर उससे क्या प्रयोजन? जिसका तेज सुशोभित होता है वही बलवान् होता है।

हस्ती स्थूलतनुः स चाङ्कशवशः किं हस्तिमात्राङ्कशो-
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरिः।
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः।।211।।
कृशोऽपि सिंहो न समो गजेन्द्रैः सत्त्वं प्रधानं न च मांसराशि।
अनेक वृन्दानि वने गजानां सिंहस्य नादेन मदं त्यजन्ति।।212।।

ततो दण्डेन केचन भूमौ पातिताः, केचन मारिताः, केचन प्रचण्ड दण्डिनो मोहिताश्च। एतद्वृत्तान्तं केनचिद् राज्ञोऽग्रे निरूपितम्। ततो राज्ञाऽन्येऽपि तद्वधार्थं प्रेषिताः। तेऽपि तथैव मारिताः। ततः कुपितो राजा चतुरङ्गबलेन सह समागतः। महति संग्रामे जाते सति सर्वेऽपि मारिताः। राजा एक एव स्थितः। देवेन महाभयंकरं राक्षसरूपं धृतम्। सर्वानागतान् राजानं च भयभ्रान्त चित्तानकरोत्। राजा भयाद्भीतः भयाक्रान्तेन राज्ञा पर्लंयतां कृतञ्च। पृष्ठे स देवो लग्नः। भणितं च तेन-रे पापिष्ठ! अधुना यत्र व्रजसि तत्र मारयामि। यदिग्रामबहिःस्थ सहस्त्रकूट जिनालय निवासि श्रेष्ठि जिनदत्तस्य शरणं गच्छसि चेद् रक्षयामि नान्यथा।

हाथी स्थूल होता है, वह भी अंकुश के वश होता है सो क्या वह अंकुश हाथी के बराबर होता है? वज्र से भी ताड़ित हुए पहाड़ गिर जाते हैं सो क्या पहाड़ वज्र के

बराबर होते हैं और दीपक के प्रज्ज्वलित होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है सो क्या अंधकार दीपक के बराबर होता है? अर्थात् नहीं होता। परमार्थ यह है कि जिसके तेज होता है वही बलवान् होता है। स्थूल लोगों में क्या विश्वास किया जाय।।211।।

सिंह दुबला होकर भी गजराजों के समान होता। बल प्रधान है, माँस की राशि नहीं। वन में सिंह की गर्जना से हाथियों के अनेक झुण्ड मद छोड़ने लगते हैं।।212।।

तदनन्तर उसने कितने ही राजकिङ्करों को दण्ड से पृथ्वी पर गिरा दिया, कितनों को मार डाला और प्रचण्ड दण्ड को धारण करने वाले कितने ही लोगों को मोह में डाल दिया-मूर्च्छित कर दिया। यह सब समाचार किसी ने राजा के आगे कह दिया। जिससे राजा ने उसे मारने के लिए और भी सेवक भेजे परन्तु वे भी उसी तरह मारे गये। तब राजा कुपित होकर चतुरङ्ग सेना के साथ स्वयं आया। बहुत भारी युद्ध होने पर सभी मारे गये। एक राजा ही रह गया। देव ने महाभयंकर राक्षस का रूप रख लिया और आये हुए सब लोगों तथा राजा को भय से भ्रांतचित्त कर दिया। राजा भय से भीत हो गया। भय से युक्त हो उसने भागना शुरू किया परन्तु वह देव पीछे लग गया। उसने कहा-अरे पापी! इस समय तूँ जहाँ जायगा वही मारूँगा। यदि गाँव के बाहर स्थित सहस्त्रकूट जिनालय में निवास करने वाले जिनदत्त सेठ की

एतद्वचनं श्रुत्वा श्रेष्ठिशरणं प्रविष्टो राजा। भणितञ्च तेन-भो श्रेष्ठिन्! रक्ष रक्ष तव शरण प्रविष्टोऽस्मि। रक्षिते सति पुनः प्रतिष्ठा कृता भवतीति।

जीर्णं जिनगृहं बिम्बं पुस्तकं श्राद्धमेव वा।

उद्धार्यं स्थापनं पूर्वं पुण्यतोऽधिकमुच्यते।।213।।

नष्टं कुलं कूपतडागवापीः प्रभृष्टराज्यं शरणागतञ्च।

गां ब्राह्मणं जीर्णसुरालयञ्च य उद्धरेत्पुण्यचतुर्गुणं स्यात्।।214।।

एवं श्रुत्वा श्रेष्ठिना मनसि चिन्तितम्-अयं राक्षशः कोऽपि विक्रियावान्। अन्यस्यैतन्माहात्म्यं न दृश्यते। ततो भणितम्-हे देव! प्रपलायमानस्य पृष्ठतो न लग्यते।

भीरुः चलायमानोऽपि नान्वेष्टव्यो बलीयसा।

कदाचिच्छूरतामेति मरणे कृतनिश्चयः।।215।।

एतच्छेष्ठिवचनं श्रुत्वा राक्षसरूपं परित्यज्य देवो जातः। श्रेष्ठिनं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृतवान्। पश्चाद्देवं गुरुं च नमस्कृत्योपविष्टो देवः।

राज्ञा भणितं-हे देव। स्वर्गे विवेको नास्ति, यतो देवं गुरुं च

शरण में जाओगे तो बचाऊँगा, अन्यथा नहीं। यह वचन सुन राजा सेठ की शरण में प्रविष्ट हुआ। राजा ने कहा-हे सेठ! बचाओ, बचाओ तुम्हारी शरण में प्रविष्ट आया हूँ। रक्षा करने पर पुनः प्रतिष्ठा होती है।

जीर्ण जिनमंदिर, जिनबिम्ब, पुस्तक और श्राद्ध का उद्धार कर फिर से स्थापित करना पूर्व पुण्य से अधिक कहलाता है।।213।।

नष्ट हुए कुल, कुआ, तालाब, बावड़ी, राज्यभ्रष्ट तथा शरणागत राजा, गाय, ब्राह्मण, जीर्ण देवमंदिर का जो उद्धार करता है उसे चौगुना पुण्य होता है।।214।।

ऐसा सुनकर सेठ ने मन में विचार किया यह राक्षस कोई विक्रियाधारी है। अन्य दूसरे का ऐसा माहात्म्य नहीं दिखाई देता। इसके पश्चात् कहा-हे देव! भागते हुए के पीछे नहीं लगा जाता है।

भागते हुए भयभीत मनुष्य का बलवान् को पीछा नहीं करना चाहिए क्योंकि कदाचित् यह हो सकता है कि मरने का निश्चय कर वह शूरवीरता को प्राप्त हो जाय।।215।।

सेठ के यह वचन सुन वह राक्षस का रूप छोड़कर देव हो गया। उसने तीन प्रदक्षिणाएँ देकर सेठ को नमस्कार किया। तदनन्तर देव और गुरु को नमस्कार कर वह देव बैठ गया।

त्यक्त्वा प्रथमं गृहस्थवन्दना कृता त्वया। अपक्रमोऽयम्। तथा चोक्तम्-

अपक्रमं भवेद्यत्र प्रसिद्धक्रमलङ्घनम्।

यथा भुक्त्वा कृतस्नानो गुरून् देवांश्च वन्दते।।216।।

देवोनोक्तम्-हे राजन्! समस्तमपि विवेकं जानामि। पूर्वं देवस्य नतिः, पश्चाद्गुरोर्नतिस्तदनन्तरं श्रावकस्येच्छाकारो यथायोग्यं जानामि। किन्त्वत्र कारणमस्ति। एवं श्रेष्ठी मम मुख्यगुरुस्तेन कारणेन प्रथमं वन्दनां करोमि। राज्ञा देवः पृष्टः-केन सम्बन्धेन तव मुख्यगुरुर्जातः श्रेष्ठी? ततस्तेन देवेन स्वकीयचोरभवस्य साम्प्रतं पूर्वः समस्तो वृत्तान्तो निरूपितो राज्ञोऽग्रे। तत्र केनचिद्भणितमहो! सत्पुरुषोऽयम्। सन्तः कृतमुपकारं न विस्मरन्ति।

प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः

शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्।

उदकममृततुल्यं दद्यु राजीवितान्तं
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।।217।।

राजा ने कहा-हे देव! स्वर्ग में विवेक नहीं है क्योंकि देव और गुरु को छोड़कर तुमने पहले गृहस्थ को नमस्कार किया है। यह क्रमभङ्ग है।

जहाँ प्रसिद्ध क्रम का उल्लङ्घन होता है वह अपक्रम कहलाता है जैसे भोजन करके स्नान करता है और उसके बाद गुरु तथा देव की वंदना करता है।।216।।

देव ने कहा-हे राजन्! मैं सभी विवेक जानता हूँ कि पहले देव को नमस्कार किया जाता है तदनन्तर गुरु को और उसके पश्चात् श्रावक को यथायोग्य इच्छाकार किया जाता है। किन्तु यहाँ कारण है, यह सेठ मेरा मुख्य गुरु है इस कारण इसे पहले नमस्कार करता हूँ। राजा ने देव से पूछा कि किस संबंध से यह सेठ तुम्हारा मुख्य गुरु हुआ है? तब उस देव ने अपने चोर के भव का और वर्तमान भव का समस्त पूर्व वृत्तांत राजा के सामने कह दिया। वहाँ किसी ने कहा-अहो! यह तो सत्पुरुष है-सज्जन है, सज्जन किये हुए उपकार को नहीं भूलते हैं।

नारियल के वृक्षों ने अपनी प्रथम अवस्था में थोड़ा सा पानी पिया था इसलिये पानी का उपकार मानते हुए वे अपने शिर पर जल सहित फलों का बहुत भारी भार धारण करते हैं और मनुष्यों को जीवन पर्यंत अमृत के तुल्य पानी देते हैं सो उचित ही है क्योंकि सत्पुरुष किये हुए उपकार को भूलते नहीं है।।217।।

राज्ञोक्तम्-केन प्रेर्यमाणः सत्रेष श्रेष्ठी कृतवानेवम्? देवेनोक्तम्-भो राजन्! महापुरुषस्वभावोऽयम्-ये केचन सज्जनाः स्युस्ते प्रार्थनां विनापि सर्वेषामुपकारं कुर्वन्ति।

कस्यादेशात्प्रहरति तमः सप्तसप्तिः प्रजानां
छायाहेतोः पथि विटपिनामञ्जलिः केन बद्धा।
अभ्यर्थ्यन्ते जललवमुचः केन वा वृष्टिहेतो-
र्जात्या चैते परहित-विधौ साधवो बद्धकक्षाः।।218।।
तदसतोरयं महान् स्वभावभेदः। यतश्च
छिनत्यम्बुज-पत्राणि हंसः सत्रवसत्रपि।
सन्तोषयति तान्येव दूरस्थोऽपि दिवाकरः।।219।।
पश्चात् सर्वेषामग्रे राज्ञोक्तम्-सर्वेषां धर्माणां मध्ये महान् धर्मोऽयं जैनधर्मो

महता सुकृतेन लभ्यते। श्रेष्ठिनोक्तम्-भो राजन्! त्वयोक्तं सत्यमेव चूडामणीयते। अल्पपुण्यैर्नलभ्यतेऽयं धर्मः।

जैनोधर्मः प्रकटविभवः संगतिः साधु-लौकै-

र्विद्वद्गोष्ठी वचनपटुता कौशलं सर्वशास्त्रे।

राजा ने कहा-किससे प्रेरित होते हुए इस सेठ ने ऐसा किया? देव ने कहा-हे राजन्! महापुरुष का यह स्वभाव है-जो सज्जन होते हैं वे प्रार्थना के बिना ही सबका उपकार करते वे।

किसकी आज्ञा से सूर्य लोगों के अंधकार को नष्ट करता है? मार्ग में छाया के लिए वृक्षों के हाथ किसने जोड़े हैं? अथवा वृष्टि के लिए मेघों से कौन प्रार्थना करते हैं? किसी ने नहीं, परमार्थ यह है कि साधु जन स्वभाव से ही पर का हित करने के लिए उद्यत रहते हैं। सज्जन और दुर्जनों का यह महान् स्वभाव भेद है।।218।।

हंस निकट में रहता हुआ भी कमल के पत्तों को छिन्न-भिन्न करता है और सूर्य दूर स्थित होकर भी उन्हें संतुष्ट करता है।।219।।

पश्चात् सबके आगे राजा ने कहा-सब धर्मों के मध्य में यह जैन धर्म महान् पुण्य से प्राप्त होता है। सेठ ने कहा-हे राजन्! आपका कहना सचमुच ही चूड़ामणि के समान है। हीन पुण्यात्मा जनों के द्वारा यह धर्म प्राप्त नहीं किया जा सकता।

प्रकट महिमा से युक्त जैन धर्म, सज्जनों के साथ संगति, विद्वानों की गोष्ठी, वचनों

साध्वी रामा, चरणकमलोपासनं सद्गुरूणां

शुद्धं शीलं मतिरमलिना प्राप्यते नाल्पपुण्यैः।।220।।

लोकोत्तरं हि पुण्यस्य माहात्म्यम्।

पुण्यादिष्ट-समागमोमतिमतां हानिर्भवेत्कर्मणां-

लब्धिः पावनतीर्थभूतवपुषः साधो शुभाचारिणः।

उत्पथ्यं सुपथं यतः परमधीः कान्तिः कला कौशलं

सौभाग्यं सकलं त्रिलोकपतिगं तत्संख्यलोकार्चितम्।।221।।

ततस्तेन देवेन पञ्चाश्चर्येण जिनदत्तश्रेष्ठी प्रपूजितः प्रशसितश्च। अहं चौरोऽपि तव प्रसादेन देवो जातः। निष्कारणेन परोपकारित्वं ते। एतत्सर्वं प्रत्यक्षेण

दृष्ट्वा वैराग्यसम्पन्नो भूत्वा भणति च राजा-अहो! विचित्रं धर्मस्य माहात्म्यम्। देवा अपि धर्मस्य दासत्वं कुर्वन्ति। एवं सर्वेऽप्यबला बालादयो जानन्ति।

तथा चोक्तम्-

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्प-दामायते

सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।

की चतुराई, समस्त शास्त्रों में कुशलता, पतिव्रता स्त्री, सद्गुरुओं के चरण कमलों की सेवा, शुद्ध शील और निर्मल बुद्धि, अल्प पुण्यशाली जीवों को प्राप्त नहीं होती है।।220।।

सचमुच ही पुण्य की महिमा लोक में सर्वश्रेष्ठ है।

पुण्य से बुद्धिमान जनों को इष्ट का समागम होता है, कर्मों की हानि होती है, पवित्र तीर्थ स्वरूप शरीर को धारण करने वाले शुभाचारी साधु की प्राप्ति होती है, कुमार्ग सुमार्ग हो जाता है, उत्कृष्ट बुद्धि, कांति, कला, कौशल और तीन लोक के द्वारा पूजित त्रिलोकी नाथ का समस्त सौभाग्य, पुण्य से ही प्राप्त होता है।।221।।

तदनन्तर उस देव ने पञ्चाश्चर्यों के द्वारा जिनदत्त सेठ की बहुत भारी पूजा की और अत्यधिक प्रशंसा की। मैं चोर होकर भी आपके प्रसाद से देव हो गया हूँ। आपका परोपकारीपन अकारण है अर्थात् आप किसी स्वार्थ के बिना ही परोपकार करते हैं। यह सब प्रत्यक्ष देखकर तथा वैराग्य से युक्त होकर राजा ने कहा-अहो! धर्म की महिमा विचित्र है। देव भी धर्म का दास पना करते हैं। इस प्रकार सभी स्त्री तथा बालक आदि जानते हैं।

आध्यात्मिक निस्पृह गुरु कनकनन्दी जी ससंघ के सीपुर अतिशय क्षेत्र पर चातुर्मास हेतु मंगल प्रवेश निमित्त स्वागत-मंगल गान

रचयित्री-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : मेरा जूता है जापानी.....)

कनक गुरुवर/(ससंघ) सीपुर आये, वाणी आगम की बरसायें...
अपनी चेतना जगा लो, आया अवसर सुखदायी/(ज्ञानदायी)...

/(चातुर्मासी)...कनक गुरुवर...(स्थायी)...

नितिन भैया श्रीफल चढ़ाये...प्रायः (300) तीन सौ बार...2
श्रेयांसनाथ प्रभुवर के...नितिन हैं भक्त प्रवर...2
छोटे श्रेयांसनाथ...कनकनन्दी गुरुवर...अपनी चेतना...(1)...

निस्पृह निराडम्बर कनक संघ से...प्रभावित जैन-अजैन/(देश-विदेश)...2
नितिन भैया अतः चौमासा...कराना चाहते आजीवन...2
व्यक्ति समाज संगठन (द्वारा)...चौमासा हेतु (करे) निवेदन...अपनी चेतना...(2)...

उदित हुआ है ज्ञान सूर्य...आध्यात्म किरणों को लेकर...2
लहलहाते खेत यहाँ पर...खुशियों से भरपूर...2
सुरभित पुष्प वृन्द...गुरु चरण चढ़ाये...अपनी चेतना...(3)...

अवनि सजी है दुल्हन बन के...मेघ दामिनी संग आये...2
घटायें घनघोर छायी नभ में...मयूर भी पंख फैलाये...2
इन्द्रधनुष सप्तरंगी...मन में उल्लास जगाये...अपनी चेतना...(4)...

शीतल चन्द्र सम हैं गुरुवर...मातृ हृदय है इनका...2
भक्त-शिष्यगण गीत हैं गाते...वैश्विक रूप है इनका...2
देशी-विदेशी हैं आते...'वत्सलता' से ज्ञान पाते...अपनी चेतना...(5)...

आसपुर, दिनांक 08.07.2016, प्रातः 6.40

सीपुर एवं आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव ससंघ द्वारा प्रभावना

रचयित्री-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़िया.....)

श्रीसंघ कनक गुरु से हुआ...आध्यात्मिक ज्ञान उजाला...
वह सीपुर क्षेत्र है आला...वह अतिशय क्षेत्र निराला...(ध्रुव)...

मूलनायक श्रेयांसनाथ...जिनकी छबि सौम्य है न्यारी...जय हो...3
समता सागर मुनि श्रेष्ठ के द्वारा...प्रभावना हुई भारी...2
नितिन भैया के पुरुषार्थ से...क्षेत्र बना है आला...वह सीपुर...(1)...

प्रत्येक पूर्णमासी के दिन...यहाँ मेला लगता भारी...जय हो...3

अनेक ग्राम व प्रांत से...आते हैं नर व नारी...2
श्रद्धा-भक्ति से नत होकर...पाते हैं आनंद प्यारा...वह सीपुर...(2)...

दो हजार दश के चौमासे में...यह भूमि हुई थी पावन...जय हो...3
वैश्विक गुरु कनक श्रीसंघ के...चरण पड़े थे पावन...2
उनके पुण्य प्रताप से ही...विकसित हुआ क्षेत्र सारा...वह सीपुर...(3)...

निस्पृह निराडम्बर गुरुदेव का...व्यक्तित्व बड़ा मनभावन...जय हो...3
जो इनकी निश्रा में आता...वह हो जाता है पावन...2
भक्त नितिन का अहोभाग्य है...पाया पुनः चौमासा...वह सीपुर...(4)...

बहु व्यक्ति समाज संगठन द्वारा...चौमासा हेतु निवेदन...जय हो...3
अतः नितिन शिष्य चौमासा...चाहे है आजीवन...2
देश विदेश के जन गण मन..सब पावे पुण्य की धारा/(आनंद सारा)...वह सीपुर...(5)...

आसपुर, दिनांक 09.07.2016, प्रातः 6.40

आध्यात्मिक संस्कृति सबसे प्यारी/(न्यारी)

(चाल : तुम दिल की.....(चंदा मामा दूर के))

आध्यात्मिक संस्कृति सबसे प्यारी/(न्यारी), सत्य-समता-शांति वाली।
आत्मा को परमात्मा बनाने वाली, वैश्विक शांति देने वाली।।

भेद-भाव से रहित वाली, भेद-विज्ञान से सहित वाली।
सर्व जीव समान मानने वाली, 'जीओ और जीने' देने वाली।।

अनेकांत को मानने वाली, 'अनेकता में एकता' वाली।
'आत्मवत् सर्वजीव' वाली, आत्म निष्ठा धर्म मानने वाली।।

'जीवों को जिनेन्द्र' मानने वाली, सच्चिदानंद स्वभाव वाली।
आत्म स्वभाव को देने वाली, तन-मन-इन्द्रिय परे वाली।।

परम सत्य को मानने वाली, क्षुद्रता-संकीर्णता रहित वाली।
अंधविश्वास दिखावा रिक्त वाली, आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र वाली।।

आत्म दर्शन से सहित वाली, ढोंग प्रदर्शनों से सहित वाली।
चैतन्य चमत्कार से सहित वाली, भौतिक चमत्कार से रहित वाली।।

निस्पृह निराडम्बर सहित वाली, आत्म वैभव से सहित वाली।
स्वाधीन-स्वावलंबन सहित वाली, आत्मानुशासन से सहित वाली।।

राग द्वेष मोह से रहित वाली, शुद्ध-बुद्ध-आनंद सहित वाली।
सांसारिक बंधन से रहित वाली, अनंत आत्मिक गुण वाली।।

जाति-भाषा-लिंग रहित वाली, पंथ मत-सीमा से परे वाली।
अद्वितीय-अनुपम तर्क से परे, आत्मानुभव से सहित पूरे।।

संकल्प-विकल्प-संक्लेश परे, आकर्षण-विकर्षण-द्वंद परे।
परम पावन श्रेय व ध्येय, परम आराधनीय पूज्य व ज्ञेय।।

विश्व तत्त्व को जानने वाली, आत्म तत्त्व को पाने वाली।
तन-मन-आत्मा स्वस्थ वाली, आध्यात्मिक स्वास्थ्य पाने वाली।।

समस्त सुख की आप जननी, समस्त ज्ञान की आप जननी।
समस्त विकास की आप जननी, आत्म विकास तो आपसे जन्मी।।

तेरे बिना सभी धर्म-अधर्म, सांसारिक वैभव/(सुख) से न मिले शर्म।
तेरे हेतु ही चक्री भी त्यागे वैभव, 'कनकनन्दी' के तुम ही सर्व।।

सीपुर, दिनांक 16.07.2016, रात्रि 9.42

(कर्म सिद्धांत, मनोविज्ञान, आयुर्विज्ञान आदि-संबंधी शोधपूर्ण कविता)

विभिन्न भावों का प्रभाव चेतन-अचेतन पर

(चाल : तुम दिल की.....)

भाव का प्रभाव पड़ता सभी में पशु पक्षी कीट-पतंग तक।
मनुष्य से लेकर वनस्पति तक निर्जीव-भौतिक-पुद्गल तक।।

अशुभ-शुभ-शुद्ध भाव का पड़ता है प्रभाव यथायोग्य।
अशुभ से पाप शुभ से पुण्य रूप, परिणमन करते भौतिक कर्म।। (1)

शुद्ध भाव से पुण्य-पाप कर्म हो जाते हैं संवर व निर्जरा।
अंत में समस्त कर्म नष्ट होते जीव बनते हैं शुद्ध चिन्मय।।

क्रोध मान माया लोभ मोह से कर्म पुद्गल भी बनते अष्ट विध कर्म।
क्रोधादि के भेद-प्रभेद से कर्म बंधते हैं संख्यात, असंख्यात।। (2)

तथाहि भोजन पानी औषधि भी भाव से बनते हैं योग्य-अयोग्य।
इसी को आधुनिक विज्ञान भी मान रहा है पैसि व इफेक्ट।।

प्रेम सेवादि अच्छी भावना से पशु-पक्षी आदि भी होते प्रभावित।
गर्भस्थ शिशु से मानव तक इन भावों से होते प्रभावित।। (3)

विभिन्न भावों से शरीर-मन-इन्द्रियाँ भी होते हैं प्रभावित।
विभिन्न ग्रंथिओं से भी विभिन्न हॉर्मोन भी होते हैं स्रावित।।

धर्म विज्ञान व मनोविज्ञान में ये सब हुए हैं वर्णित।
'कनक' भी अनेक अनुभव करे, स्व-साहित्यों में किया वर्णित।। (4)

सीपुर, दिनांक 03.08.2016, अपराह्न 5.37

संदर्भ-

पादहतः प्रमदया विकसत्यशोकः
शोकं जहाति वकुलो मुखसीधुसिक्तः।
आलिङ्गित कुरुवकः कुरूते विकाश
मालोकितस्तिलक उत्कलिको विभाति।। (262) स.कौ.

स्त्री के द्वारा पैर से ताड़ित हुआ अशोक वृक्ष विकसित हो जाता है, मुख की मदिरा से सींचा हुआ बकल का वृक्ष शोक छोड़ देता है, आलिङ्गन को प्राप्त हुआ कुरवक खिल उठता है और देखा हुआ तिलक वृक्ष कलिकाओं से युक्त हो जाता है।

तस्मिन्नेव नगरे समाधिगुप्त भट्टारक आगतः। तन्नगर बाह्यस्थितोपवनमध्ये मासोपवासस्य प्रतिज्ञा गृहीता तेन। तदतिशयात् तद्वनं सुशोभितं सञ्जातम्।

उसी कौशाम्बी नगरी में किसी समय समधिगुप्त भट्टारक आये। उन्होंने नगरी के बाहर स्थित उपवन के मध्य में मासोपवास की प्रतिज्ञा की। उस अतिशय से वह वन अत्यंत सुशोभित हो गया।

शुष्काशोक-कदम्बचूत-वकुलाः खर्जूराकादिद्रुमा।
जाताः पुष्पफलप्रपल्लवयुताः शाखोपशाखाचिताः।
शुष्काब्जा जलवापिकाप्रभृतयो जाता पयःपूरिताः।
क्रीडन्त्येव सुराजहंस शिखिनश्चक्रुः स्वरं कोकिलाः।। (287) स.कौ.

अशोक, कदम्ब, आम, मौलसिरी तथा खजूर आदि के जो वृक्ष पहले सूख

गये थे वे फूल-फल व कोपलों से युक्त हो गये तथा शाखा और उप-शाखाओं से युक्त हो गये। जिनके कमल सूख गये थे ऐसी जलवापिका आदि जलाशय जल से परिपूर्ण हो गये, उनमें राजहंस पक्षी निरन्तर क्रीड़ा करने लगे व कोकिलाएँ सुंदर शब्द करने लगी।

जाति चम्पक-परिजातक-जपासत्केतकी-मल्लिकाः
पाद्मिन्यः प्रमुखाः क्षणाद्विकसिताः प्रापुद्विरेफास्ततः।
कुर्वन्तो मधुरं स्वरं सुललितं तत्गंधमाघ्राय ते
गायन्ते विहगाः परस्परपरे भातीदृशं तद्वनम्।। (288) स.कौ.

चमेली, चम्पा, परिजात, जपा, उत्तम केतकी, मालती तथा कमलिनी आदि क्षणभर में खिल उठे, उनकी सुंदर सुगंध को सूँघकर भौंरे मधुर शब्द करने लगे और पक्षी परस्पर गाने लगे। इस प्रकार वह वन सुशोभित हो उठा।

साधवस्तु कृपावन्तो भवन्ति पुण्य चेतसः।
अपकृतौ च सत्यां वै कुर्वन्त्युकारकं सदा।। (289) स.कौ.

पवित्र चित्त के धारक साधु परम दयालु होते हैं। अपकार करने पर भी वे सदा उपकार ही करते हैं।

देहे निर्ममता गुरौ विनयता नित्यं श्रुताभ्यासता
चारित्रोज्ज्वलता महोपशमता संसार-निर्वेदता।
अन्तरबाह्य-परिग्रहत्यजनता धर्मज्ञता साधुता
साधोः साधुजनस्य लक्षणमिदं संसार-विच्छेदकम्।। (290) स.कौ.

शरीर में ममता का अभाव, गुरु में नम्रता, निरंतर शास्त्र का अभ्यास, चारित्र की निर्मलता, अत्यंत शांतिवृत्ति, संसार से उदासीनता, अंतर तथा बाह्य परिग्रह का त्याग, धर्मज्ञता व सज्जनता यह उत्तम साधु का लक्षण है और यह लक्षण उनके संसार का विच्छेद करने वाला है।

स्वात्माश्रित धर्म करूँ न कि धनाश्रित

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)
जिया रे! (तू) अर्थ को अनर्थ मानोऽऽऽ

परमार्थ हेतु चक्रवर्ती भीऽऽऽ त्यागे राज्य-वैभवपूर्णऽऽऽ...(ध्रुव)...

परिग्रह त्याग हेतु तीर्थंकर तकऽऽऽ त्यागते अलंकार-वस्त्र तकऽऽऽ
निस्पृह-निराडम्बर-वीतरागी बनऽऽऽ पाते हैं दीक्षा कल्याणकऽऽऽ
तब ही बनते निर्ग्रन्थ श्रमणऽऽऽ जिया...(1)...

स्व-परिवार-प्रजा व इन्द्र तक कोऽऽऽ न देते परिग्रह हेतु उपदेशऽऽऽ
श्रावक हेतु अपरिग्रह अणुव्रतऽऽऽ श्रमण हेतु अपरिग्रह महाव्रतऽऽऽ
देते मोक्षमार्ग उपदेशऽऽऽ जिया...(2)...

उनसे शिक्षा लो अर्थ का मोह त्यागोऽऽऽ मन-वचन-काय द्वाराऽऽऽ
कृत-कारित-अनुमत से त्यागोऽऽऽ धन आश्रित धर्म न करोऽऽऽ
आत्म-आश्रित धर्म करोऽऽऽ जिया...(3)...

दान दया पूजा तीर्थ आदि हेतुऽऽऽ श्रावकों को तो चाहिए धनऽऽऽ
तू श्रमण महाव्रतधारी निर्ग्रन्थऽऽऽ ध्यान-अध्ययन-समता प्रधानऽऽऽ
आत्मविशुद्धि शांति प्रधानऽऽऽ जिया...(4)...

धन आश्रित धर्म करने सेऽऽऽ धनी का लेना होता आश्रयऽऽऽ
याचना दबाव प्रलोभन भयऽऽऽ होते राग-द्वेष-पक्षपातऽऽऽ
यह नहीं है श्रमण धर्मऽऽऽ इससे होता आत्म पतनऽऽऽ जिया...(5)...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा होतीऽऽऽ होते संकल्प-विकल्प-संक्लेशऽऽऽ
समता-शांति-निस्पृहता नशतीऽऽऽ नशते ध्यान व अध्ययनऽऽऽ
यह तो ढोंग-पाखण्ड कामऽऽऽ जिया...(6)...

ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि-वर्चस्वऽऽऽ लंद-फंद-द्वंद्व व चिन्ताऽऽऽ
अस्त-व्यस्त-संत्रस्त त्यागकरऽऽऽ करना मुझे आत्म-आराधनाऽऽऽ
आद हिंद सुट्ठु कादव्वंऽऽऽ जिया...(7)...

आत्म प्रभावना आत्म कल्याणऽऽऽ तू सदा प्रमुखता से करऽऽऽ
बाह्य प्रभावना व परोपकार कोऽऽऽ आनुषंगिक रूप से करऽऽऽ
'कनक' स्व-पर प्रकाशी तू बनऽऽऽ स्व प्रकाश से पर प्रकाशी बनऽऽऽ जिया...(8)...

सीपुर, दिनांक 20.07.2016, रात्रि 9.52

'अभिमान' से परे 'स्वाभिमान'<'सोऽहं'<'अहं' भावी बनूँ!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू 'अभिमान' त्यजऽऽऽ

'स्वाभिमानी' बनकर 'सोऽहंभावी' बनऽऽऽ 'सोऽहं' से 'अहंभावी' बनऽऽऽ...(ध्रुव)...

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्रीऽऽऽ जाति लिंग व तन-मनऽऽऽ
ये सभी तेरा स्वभाव नहीं हैऽऽऽ ये तो भौतिक या विभावऽऽऽ
(अतः) इससे/(में) न करो अभिमानऽऽऽ जिया...(1)...

इससे परे तेरा स्वभाव हैऽऽऽ अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्यऽऽऽ
उत्तम क्षमादि दशविध धर्मऽऽऽ रत्नत्रयमय स्वशुद्ध आत्मन्ऽऽऽ
इसका/(स्वयं का) करो स्वाभिमानऽऽऽ जिया...(2)...

स्वाभिमान द्वारा आत्म स्वभाव बढ़ाओऽऽऽ विभाव व परद्रव्य त्यागोऽऽऽ
मैं हूँ शुद्धात्मा सम 'सोऽहं' भाव धरोऽऽऽ 'सोऽहं' से बनो 'अहंमय'ऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध अहंभावी बनऽऽऽ जिया...(3)...

जीव से जिनेन्द्र भव्य से भगवान्ऽऽऽ बनना ही है 'अहं' स्वभावऽऽऽ
अहंकार-ममकार-विभाव त्यागकरऽऽऽ बनना है शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽऽ
'कनक' सच्चिदानंद स्वभावऽऽऽ जिया...(4)...

ये है परम आध्यात्मिक रहस्यऽऽऽ न जानते रागी द्वेषी मोहीऽऽऽ
सर्वज्ञ-ज्ञात गणधर कथितऽऽऽ श्रद्धा प्रज्ञा से जाने अनुभवीऽऽऽ
'कनक' आत्मानुभवी बनऽऽऽ जिया...(5)...

सीपुर, दिनांक 26.07.2016, प्रातः 9.54

नकल बिना स्वतंत्र-मौलिक बनूँ!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू स्वतंत्र-मौलिक बनऽऽऽ

नकल व भीड़ मनोविज्ञान परेऽऽऽ सत्य अनुसंधान करऽऽऽ...(ध्रुव)...

लोकानुगतिक लोग होते हैंऽऽऽ न होते पारमार्थिकऽऽऽ
ख्याति पूजा व स्वार्थ हेतुऽऽऽ अंधानुकरण करे अधिकऽऽऽ
सामाजिक प्रतिष्ठा आत्म रक्षार्थऽऽऽ जिया...(1)...

तुझे तो परम सत्य चाहिएऽऽऽ चाहिए समता व शांतिऽऽऽ
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र चाहिएऽऽऽ आत्मविशुद्धि-आत्मोपलब्धिऽऽऽ
निस्पृह भेद-विज्ञान सेऽऽऽ जिया...(2)...

लोकानुरञ्जन-भीड़ जुटाने हेतुऽऽऽ चाहिए लोकानुसार प्रवृत्तिऽऽऽ
अन्य के मनानुसार होती प्रवृत्तिऽऽऽ भेड़-भेड़िया चाल प्रवृत्तिऽऽऽ
लकीर के फकीर प्रवृत्तिऽऽऽ जिया...(3)...

तीर्थंकर बुद्ध समाज सुधारकऽऽऽ क्रांतिकारी नेता वैज्ञानिकऽऽऽ
लेखक दार्शनिक आत्म सुधारकऽऽऽ न होते लकीर के फकीरऽऽऽ
होते मौलिक-स्वतंत्रऽऽऽ करते सत्य/(तथ्य) अनुसंधानऽऽऽ जिया...(4)...

ऐसा ही तुझे भी करना सदा हैऽऽऽ सत्य-तथ्य अनुसंधानऽऽऽ
समता शांति निस्पृह/(निष्पक्ष) सहितऽऽऽ करना आत्म अनुसंधानऽऽऽ
'कनक' शुद्ध-बुद्ध-आनंद बनऽऽऽ जिया...(5)...

सीपुर, दिनांक 25.07.2016, मध्याह्न 2.53
(यह कविता विदेशी वैज्ञानिक टी.वी. चैनल से भी प्रेरित है।)

अनुभवपरक शोधपूर्ण कविता

मेरा अनुभव : सर्वज्ञ है व मुझमें भी है सर्वज्ञता-शक्ति व सुप्त रूप में

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

सर्वज्ञ कथित आचार्य रचित ग्रंथों से मुझे हो रहा है ज्ञान।
सर्वज्ञ ही जानते संपूर्ण सत्य अन्य को न होता संपूर्ण ज्ञान।।

देश-विदेशों के साहित्य पढ़ने से मुझे हो रहा है ऐसा अनुभव।
धर्म दर्शन विज्ञान गणित आयुर्वेद पुराण कानून संविधान।। (1)

जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-काल का जो वर्णन।
आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा-पुण्य-पाप-मोक्ष स्वरूप को जो वर्णन।।

तेइस वर्गणाएँ व अणु का वर्णन तथाहि अलौकिक गणित का ज्ञान।
अनेकांत स्याद्वाद का स्वरूप मार्गणा व गुणस्थान का ज्ञान।। (2)

ऐसा सूक्ष्म व व्यापक ज्ञान, अन्यत्र मुझे न मिला अभी तक।
सत्य-तथ्य व कार्य कारण सहित, अलौकिक गणित से संयुक्त।।

ऐसा मुझे अन्यत्र नहीं मिला जैसा कि आगम में वर्णित।
तथाहि रत्नत्रय व दशधा धर्म, अणुव्रत, महाव्रतों का वर्णन।। (3)

मुझमें भी सर्वज्ञता शक्ति, सुप्त रूप में है विद्यमान।
जो न पढ़ा-सुना इस भाव में, वे भी मुझे हो जाता है ज्ञान।।

अनुमान तर्क कार्यकारण व अनुभव कल्पना से होता ज्ञान।
स्वप्न-शकुन-अंगस्फूरण व अन्तःकरण से हो जाता ज्ञान।। (4)

देश-विदेशों के साहित्य व वैज्ञानिक, अनुसंधान से हो रहा सिद्ध।
सुघटणा व कुघटणा के द्वारा, मेरा ज्ञान भी हो जाता है सिद्ध।।

इससे मेरा आत्मविश्वास बढ़ रहा, सर्वज्ञ होते हैं निश्चय से।
आत्मविशुद्धि ध्यान-अध्ययन द्वारा, मैं (कनक) भी सर्वज्ञ बनूँगा निश्चय से।। (5)

सीपुर, दिनांक 27.07.2016, मध्याह्न 3.00
(विदेश में हो रहे नवीनतम अनुसंधानों से भी प्रेरित यह कविता।)

मैं निष्क्रियता व आक्रामकता से परे सुदृढ़ बनूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)
जीया रे! तू स्वयं में सुदृढ़ बनोऽऽऽ
निष्क्रियता आक्रामकता परेऽऽऽ सत्य में तू सुदृढ़ बनोऽऽऽ...(ध्रुव)...

निष्क्रियता में है प्रमाद आलस्यऽऽऽ बहाना व परावलंबऽऽऽ
आत्म दुर्बलता प्रगति हीनताऽऽऽ किंकर्त्तव्यमूढ़ता भय संकोचऽऽऽ
आत्म सुधार में दुर्बलताऽऽऽ...(1)...

आक्रामकता में ईर्ष्या द्वेष घृणाऽऽऽ पर पीड़न प्रतिशोधऽऽऽ
अहंकार पर दोषारोपण हिंसाऽऽऽ वर्चस्व दूराग्रह हठाग्रहऽऽऽ
शांति-समता विध्वंसकऽऽऽ...(2)...

दोनों से परे तू सुदृढ़ बनोऽऽऽ सनम्र-सत्यग्राही शांतचित्तऽऽऽ
धीर-वीर व गंभीर बनोऽऽऽ सरल सहज समतावान्ऽऽऽ
वज्र सम पारदर्शी दृढ़वान्ऽऽऽ...(3)...

दीन-हीन-अहंकार त्यजकरऽऽऽ आत्म गौरव से परिपूर्णऽऽऽ
दोषों को स्वीकार दोष दूर करऽऽऽ सत्य-तथ्य करो स्वीकारऽऽऽ
निष्पक्ष निर्द्वंद रहोऽऽऽ...(4)...

पर निन्दा अपमान क्षति से परेऽऽऽ सत्य को कर तू पालन/(लेखन)ऽऽऽ
सहयोग-समन्वय-सदाशय सहऽऽऽ आत्मविश्वास से करो आचरणऽऽऽ
नकलची कदाचित् न बनऽऽऽ...(5)...

पर सुगुण पर हितोपदेश मानोऽऽऽ प्रत्यक्ष परोक्ष सर्वत्रऽऽऽ
क्रूर कठोरता संकीर्णता त्यागोऽऽऽ उदारता शुचिता भाव धरोऽऽऽ
असत्य में बनो सुदृढ़ऽऽऽ...(6)...

स्लोथ (पशु) कामचोर शेखचिल्ली समऽऽऽ न बनो तू कदापि निष्क्रियऽऽऽ
रावण कंस हिटलर हिप्पो (पशु) समऽऽऽ न बनो कदापि आक्रामकऽऽऽ
बनो तू सुदृढ़ व सक्रियऽऽऽ...(7)...

तीर्थंकर राम बुद्ध विक्रमादित्यऽऽऽ शिवाजी सुभाष गाँधी समऽऽऽ
लिंकन मण्डेला मीरा टेरेसा समऽऽऽ बनो हे! सुदृढ़ सत्य-साम्यऽऽऽ
'कनक' (तेरा) स्वभाव अविचलमयऽऽऽ...(8)...

सीपुर, दिनांक 30.07.2016, रात्रि 9.34

(यह कविता Am I making myself clear? टेरी फेल्ब से भी प्रभावित है।)

भौतिक तत्त्व से भिन्न है जीव

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

भौतिक से ही यदि बनते हैं जीव, जीव में न होते निम्नोक्त गुण।

अशुभ-शुभ व शुद्ध चैतन्य भाव, आत्म-विश्वास-ज्ञान-चारित्र गुण।। (1)
भौतिक में न होते हैं उपरोक्त गुण, अणु से लेकर महास्कंध तक।
इसी में होते हैं स्पर्श रस गंध वर्ण, हल्का भारी आदि अचेतन गुण।। (2)
निगोदिया से लेकर सिद्ध जीव तक, चेतना गुण होता अवश्य हीनाधिक।
अशुभ-शुभ व शुद्ध चेतना रूप में, शारीरिक सुख से आत्मिक सुख तक।। (3)
क्रोध मान माया लोभ मोह अशुभ, दया-दान सेवा परोपकारादि शुभ।
आत्मविशुद्धि आत्मानुभवादि शुद्ध, सच्चिदानंदमय अमूर्त स्वभाव।। (4)
शारीरिक-मानसिक आदि सुख-दुःख, हास्य-रति-अरति व भय शोक।
ग्लानि स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसक वेद, आहार-निद्रा-आलस्य-लज्जा खेद।। (5)
जन्म-मरण-रोग व वृद्धावस्था, आनंद-उत्साह-प्रेरणा-आस्था।
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ अवस्था, जीवों में ही पाई जाती ये चेतनावस्था।। (6)
भौतिक में न पाई जाती ये अवस्था, अतएव जीव से भिन्न भौतिक दशा।
चार्वाक से लेकर भौतिक वैज्ञानिक तक, न जानते न मानते सत्य उपरोक्त।। (7)
सर्वज्ञ जानते उपरोक्त पूर्ण सत्य, श्रद्धा-प्रज्ञा से अनुभव उक्त सत्य।
विज्ञान में अनसुलझे हैं अभी तक, श्रद्धा प्रज्ञा अनुभव से जाने 'कनक'।। (8)

सीपुर, दिनांक 30.07.2016, मध्याह्न 2.55

मैं उत्तम भावना भाऊँ

(सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री-पदवी-अधिकार बिना)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की.....)

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि डिग्री, बिना मैं महान् भावना भाऊँ।
मुक्ति-प्राप्ति विश्व शांति हेतु पदवीं अधिकार बिना भाऊँ।।

भावना भाना है आत्मा का स्वभाव, इसी हेतु न चाहिए धन-जन।
उत्तम भावना भाने हेतु तो, चक्रवर्ती भी त्यागते धन-जन।। (1)

सत्ता आदि के कारण से तो, भावना हो जाती है मलीन।
जिससे भावना होती मलीन, उससे न होती भावना निर्मल।।

मैत्री प्रमोद माध्यस्थ कारुण्य भावना हेतु न चाहिए सत्ता-संपत्ति।
षोडश कारण व बारह भावना हेतु न चाहिए प्रसिद्धि व डिग्री।। (2)

दो कल्याणधारी तीर्थंकर भी, जो उत्कृष्ट भावना भा न पाते।
सत्ता-संपत्ति आदि त्याग के अनंतर वह भावना भी भा पाते।।

उत्कृष्ट धर्मध्यान, शुक्लध्यान तो सत्तादि वालों को नहीं होते।
इसी हेतु अंतरंग-बहिरंग परिग्रह, त्याग चाहिए सत्तादि बाधक।। (3)

चक्रवर्ती इन्द्र तक को नहीं होते, उत्कृष्ट धर्मध्यान व शुक्लध्यान।
निस्पृह आकिंचन्य वीतरागी साधु को, होते उत्कृष्ट धर्म व शुक्लध्यान।।

कुभावना से होता आत्म पतन, सुभावना से होता आत्म उत्थान।
'कनकनन्दी' भी उत्तम भावना द्वारा, कर रहा है आत्म उत्थान।। (4)

सीपुर, दिनांक 03.08.2016, प्रातः 8.46
(यह कविता 'स्वयं में विश्वास' जोसेफ मर्फी से भी प्रभावित है।)

अनुभवजन्य सत्य द्वारा मैं आगे बढ़ूँ!

(मेरे लक्ष्य-साधना-अनुभव)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

आत्मशक्ति व कर्मफल का...इस भव में अनुभव चाहता हूँ...
महान् लक्ष्य व उदार भाव का...अनुभव करना चाहता हूँ...(स्थायी)...

समता शांति निस्पृहता का...अनुभव करना चाहता हूँ...
ज्ञान-ध्यान व तप-त्याग का...अनुभव करना चाहता हूँ...

आडम्बर-ढोंग-पाखण्ड त्याग का...अनुभव करना चाहता हूँ...
सरल-सहज-नम्रता भाव का...अनुभव करना चाहता हूँ...(1)...

मृदु मधुर व निर्मल भाव का...अनुभव करना चाहता हूँ...
विश्वकल्याण की पावन भावना...अनुभव करना चाहता हूँ...

मौन-एकांत-निर्द्वन्द्व भाव का...अनुभव करना चाहता हूँ...

भेद-भाव रिक्त पक्षपात रहित का...अनुभव करना चाहता हूँ...(2)...

हित-मित-प्रिय-सत्य वचन का...अनुभव करना चाहता हूँ...

अक्षमा भाव-व्यवहार न रखने का...अनुभव करना चाहता हूँ...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रहित का...अनुभव करना चाहता हूँ...

संकल्प-विकल्प-संक्लेश रहित का...अनुभव करना चाहता हूँ...(3)...

भौतिक परे नैतिक द्वारा...आध्यात्मिक होना (मैं) चाहता हूँ...

बुद्धि से परे संवेदना द्वारा...आध्यात्मिक होना चाहता हूँ...

रीति-रिवाज परे सत्य-समता द्वारा...आध्यात्मिक बनना चाहता हूँ...

वाद-विवाद परे शोध-बोध द्वारा...आध्यात्मिक बनना चाहता हूँ...(4)...

व्यक्ति-समाज व राष्ट्र से परे...वैश्विक अनुभव चाहता हूँ...

नीति-परंपरा-कानून-संविधान परे...वैश्विक सत्य चाहता हूँ...

देखा-सुना व पढ़ने से परे...अनुभव से सत्य पाना चाहूँ...

शरीर-इन्द्रिय-यंत्र से परे...अनुभव से सत्य को पाना चाहूँ...(5)...

स्वप्न-शकुन-अंगस्फूरण से...सत्य को जानना चाहता हूँ...

इतिहास-पुराण-विज्ञान परे/(द्वारा)...सत्य को जानना चाहता हूँ...

वाद-विवाद-मत-पंथ परे...परम सत्य को पाना चाहूँ...

तन-मन-अक्ष-स्वास्थ्य द्वारा...आध्यात्मिक स्वास्थ्य चाहूँ...(6)...

अनुभवजन्य प्राप्त सत्य से...आगे ही बढ़ना चाहता हूँ...

राग-द्वेष-मोह-ईर्ष्या-तृष्णा...छोड़कर आगे ही बढ़ना चाहूँ...

कोई माने या नहीं माने...इसकी चिन्ता को त्यजकर...

अनुभवजन्य प्राप्त सत्य द्वारा...'कनक' बढ़े सत्य के मार्ग पर...(7)...

सीपुर, दिनांक 28.07.2016, रात्रि 8.57

(साधु से लेकर भक्त-शिष्य तक मेरे गुण संबंधी जो बोलते हैं, उससे प्रेरित होकर यह कविता बनी।)

मेरी निर्भय बनने की साधना

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे....., सायानोरा.....)

जीया रे! तू पूर्ण निर्भय बनऽऽऽ
निर्भय हेतु वैरागी बनऽऽऽ निस्पृह निराडम्बर बनऽऽऽ...(ध्रुव)...

पर से भिन्न स्वयं में पूर्णऽऽऽ होता है वैराग्य परिपूर्णऽऽऽ
स्व-स्वरूप ही है निर्भय पूर्णऽऽऽ पर स्वरूप होता भयपूर्णऽऽऽ
अनंतज्ञान दर्श सुख पूर्णऽऽऽ जिया रे...(1)...

पर संबंध/(संयोग) से होता है भय, मरण वेदनादि सप्त भय।
संयोग-वियोग परे स्व-शुद्ध आत्मा में, अनंत निर्भय परिपूर्ण।।
वैराग्य से बनो शुद्धात्मनऽऽऽ जिया रे...(2)...

जन्म-जरा-मृत्यु संयोग-वियोग, सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि।
भोगोपभोग में ममत्व बुद्धि से, होती भय की उत्पत्ति।।
अतः निर्ममत्व वैरागी बनऽऽऽ जिया रे...(3)...

जन्म-जरा-मृत्यु तन से संभव, अतः तन से बनो तू वैरागी।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि क्षय से, होती भय की उत्पत्ति।।
अतः सत्तादि से बनो वैरागीऽऽऽ जिया रे...(4)...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा के कारण, होता है भय उत्पन्न।
निर्भय बनने हेतु तीनों को त्यागो, बनो समताधारी श्रमण।।
कृतकृत्य स्वयं में ही संपूर्ण ऽऽऽ जिया रे...(5)...

संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागो, राग-द्वेष-मोहादि त्यागो।
ईर्ष्या-तृष्णा व वर्चस्व त्यागो, जिससे पाओगे निर्भय भाव/(पद)।।
'कनक' निर्भयनंद भोगोऽऽऽ जिया रे...(6)...

सीपुर, दिनांक 25.07.2016, रात्रि 8.53

संदर्भ-

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं-
दासे स्वामिभयं जये रिपुभय वंशे कुयोषिद्भयम।
माने म्लान भयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं-
सर्वं नाम भयं भवेदिदमहो वैराग्यमेवाभयम्।।

भोग में रोग का भय है, सुख में क्षय का भय है, धन में अग्नि और राजा का भय है, दास में स्वामी का भय है, विजय में शत्रु का भय है, कुल में कुलटा स्त्री का भय है, मान में मलिनता आने का भय है, गुण में दुर्जन का भय है और शरीर में यमराज-मृत्यु का भय है। इस प्रकार सभी वस्तुओं में भय है परन्तु आश्चर्य है कि वैराग्य अभय है-भय से रहित है।

चातुर्मास निमित्त विशेष कविता.....

धन से परे ही होता है अधिक धर्म

(बिना धन से गृहस्थ श्रावक भी श्रमण के समान अधिक धर्म कर सकते है!)

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

वस्तु स्वभाव धर्म होने से...शुद्ध स्वरूप ही जीवों का धर्म...
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य व...उत्तम क्षमादि दशविध धर्म...

इसी धर्म को प्राप्त करने हेतु...होते हैं समस्त धार्मिक कर्म...
दान पूजादि श्रावक/(गृहस्थ) धर्म व...रत्नत्रयमय श्रमण/(साधु) धर्म...(1)...

दान पूजादि हेतु द्रव्य/(धन) चाहिए...किन्तु बिन द्रव्यादि भी होता श्रावक धर्म...
मन वचन काय व कृत कारित...अनुमोदना से भी होता श्रावक धर्म...

जिनके पास नहीं है धन वे भी...नवकोटि से कर सकते हैं धर्म...
धन सहित जो होते वे भी कर सकते...धन व्यय सह नवकोटि से धर्म...(2)...

दान दया परोपकारी व गुण-गुणी...जीवों की भी करके अनुमोदना...
प्रशंसा व प्रोत्साहन करके...कर सकते धर्म की आराधना...

गुणी-वैरागी साधु-साध्वी की...प्रशंसा-पूजा-वैयावृत्ति आदि से...

बिना धन से भी धर्म कर सकते...गृहस्थ जन नवकोटि से...(3)...

शांति समता व पावन भाव से...वात्सल्य दया विनम्र भाव से...
ईर्ष्या द्वेष घृणा रहित भाव से...धर्म कर सकते हैं क्षमा भाव से...

निन्दा चुगली वाद-विवाद रहित...समन्वय व एकता भाव से...
मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ से...धर्म कर सकते हैं स्वाध्याय से...(4)...

इससे सिद्ध होता गृहस्थ जन भी...बिना धन ही करते अधिक धर्म...
उक्त भाव-व्यवहार बिन धन खर्च से भी...नहीं कर सकता यथार्थ धर्म...

परम धर्म प्राप्ति के हेतु ही तो...संपूर्ण धन त्याग करते श्रमण...
धन सहित कोई भी गृहस्थ...नहीं बन सकते हैं सच्चे श्रमण...(5)...

तप-त्याग-ध्यान-अध्ययन से ही...श्रमण करते हैं अधिक धर्म...
दान पूजा युक्त चक्रवर्ती से भी...श्रमण करते हैं अधिक धर्म...

तन-मन-इन्द्रिय पुण्य-पाप से भी...रहित जब बन जाते हैं श्रमण...
तब ही वे मोक्ष प्राप्त करके...बन जाते हैं साक्षात् परम धर्म...(6)...

इसी से सिद्ध होता है धनाश्रित ही...नहीं होता है यथार्थ धर्म...
यथार्थ धर्म तो पावन भाव (व्यवहार) है...'कनकनन्दी' का आत्मिक धर्म...(7)...

सीपुर, दिनांक 28.07.2016, रात्रि 9.28
(यह कविता श्रमण सुविज्ञसागर के कारण बनी।)

आनंद से करूँ दुःख नाश व आत्मविकास!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)
जिया रे! तू आनंदपूर्ण बनऽऽऽ
आनंद ही तेरा शुद्ध स्वरूपऽऽऽ दुःख तो विभाव रूपऽऽऽ...(ध्रुव)...

राग द्वेष मोह काम क्रोध सेऽऽऽ नशता है आनंद तेराऽऽऽ
संकल्प-विकल्प-संक्लेश द्वाराऽऽऽ नशता है आनंद तेराऽऽऽ
(अतः) राग द्वेषादि विनाश करऽऽऽ जिया...(1)...

आनंद से तुझे आह्लाद मिलेगाऽऽऽ जिससे बनोगे उल्लास/(उत्साह)ऽऽऽ

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र बढ़ेंगेऽऽऽ नये-नये संवेग उत्पन्न होंगेऽऽऽ
बढ़ेंगे शोध-बोध-अनुभवऽऽऽ जिया...(2)...

संकीर्ण कट्टरता-द्वंद्व नशेंगेऽऽऽ हठाग्रह-दुराग्रह नशेंगेऽऽऽ
तनाव उदास डिप्रेशन नशेंगेऽऽऽ नशेगा किंकर्त्तव्य विमूढ़पनऽऽऽ
क्रियाशीलता होगी वर्द्धमानऽऽऽ जिया...(3)...

दीनता-हीनता-अहंकार नशेंगेऽऽऽ निन्दा कलह वैरत्वऽऽऽ
समता शांति संतुष्टि बढ़ेगीऽऽऽ तन-मन आत्मा होंगे स्वस्थऽऽऽ
आत्मा विकास में बनोगे दक्षऽऽऽ जिया...(4)...

ध्यान-अध्ययन-मनन-चिन्तनऽऽऽ लेखन-अध्यापन-प्रवचनऽऽऽ
आत्मविशुद्धि निस्पृह वृत्तिऽऽऽ होगी तेरी प्रवर्द्धमानऽऽऽ
आत्मानुभूति होगी वर्द्धमानऽऽऽ जिया...(5)...

इससे कर्मों का संवर बढ़ेगाऽऽऽ होगी निर्जरा व मुक्तिऽऽऽ
सच्चिदानंदमय पूर्ण बनोगेऽऽऽ दुःखों से होगी शाश्वत मुक्तिऽऽऽ
शुद्धात्मा स्थिति 'कनक' कीऽऽऽ जिया...(6)...

सीपुर, दिनांक 04.08.2016, मध्याह्न 2.36

ज्यादा क्रिएटिव क्यों होते हैं, खुशमिजाज लोग...

-हरवंश दुआ, इनोवेशन सलाहकार

युवा आज के दौर में अपनी खुशी को तनख्वाह के बराबर तरजीह दे रहे हैं। गूगल, थ्री.एम., आई.बी.एम. जैसी तेजी से उभरने वाली कंपनियां यह राज जानती हैं कि एक प्रसन्नचित्त कर्मचारी नाखुश की तुलना में न केवल 22 प्रतिशत ज्यादा काम करता है बल्कि क्रिएटिव भी ज्यादा होता है। इससे उन्हें नए आइडियाज मिलते हैं और वो समस्याएँ भी तेजी से सुलझाते हैं। दरअसल क्रिएटिविटी खुश मनः स्थिति की उपज है। खुशमिजाज लोगों की सोच नए विचारों के प्रति खुली और व्यापक होती है। उनकी भावनाएँ काबू में रहती हैं। वे लकीर पीटने के बजाए, समस्याओं के नए हल खोजने में विश्वास रखते हैं। नई अवधारणाएँ नए प्रयोग उन्हें आकर्षित करते हैं। जबकि निराश लोगों की सोच संकुचित होती है। उनका स्वभाव बहस करने वाला, खामियाँ खोजने वाला, चिड़चिड़ा और गुस्सैल होता है। आँकड़ें इसी ओर इशारा करते हैं कि खुशी और क्रिएटिविटी का गहरा संबंध है।

वर्ल्ड हैप्पीनेस इंडेक्स में हम 118वें पायदान पर है और ग्लोबल क्रिएटिविटी इंडेक्स में 99वें स्थान पर वहीं दूसरे देश उच्चतम स्तर पर है।

भारत में निराश लोगों की तादाद ज्यादा है इसी वजह से रचनाशील भी कम हैं। यही सामाजिक और आर्थिक विकास की धूरी है।

खुश रहने की कला सीखनी होगी...

किसी इंसान की पहली और सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी एक खुशमिजाज प्राणी होने की है। खुश रहना जीवन का चरम पहलू नहीं है। यह जीवन का बुनियादी पहलू है। हमें खुश रहने की कला सीखनी होगी। खुशी से ही बदलाव शुरू होता है। यह एक प्रक्रिया है जो एक साथ कई दरवाजे खोलती है। इससे प्रतिभाएँ बाहर आती हैं, नजरिया बदलता है, विश्वास बढ़ता है। यह चेन रिएक्शन है। जब आप खुश होंगे तो विचार खुले होंगे। नए आइडिया आएंगे, ज्यादा रचनाशील बनेंगे। जब कुछ नया रचेंगे तो और ज्यादा उल्लास होगा। यह शृंखला बन जाएगी और निरंतर विकास होता रहेगा।

खुश रहने का एक तरीका है-वह काम करे जिसे करने में खुशी मिलती है। इससे उत्पादकता भी बढ़ेगी और आप अपने काम को दुनिया के श्रेष्ठतम स्तर तक ले जा सकते हैं। भावनात्मक स्तर भी संतुलित रहेगा। इसके विपरीत वह काम कभी न करें, जिसमें खुशी न छिपी हो। मसलन ईर्ष्या, द्वेष, दुर्भावना, लालच, धोखा आदि कभी किसी को खुशी नहीं दे सकते।

आत्मानंद से कर्म-नष्ट

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्यचेतनः।। (48)

Self produced happiness is constant by burning up the karmic fuel in large quantities, while the yogi, indifferent to the external pain, is no affected by it in the least!

वह आत्मानंद प्रवाह रूप से आने वाली प्रचुर कर्म संतति को निर्दहन कर देता है जिस प्रकार अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है। ऐसा आनंद से सम्पन्न योगी परिषह, उपसर्ग क्लेशादि बाह्य दुःख को अनुभव नहीं करता है। इसलिए वह उससे

संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है, खेद को प्राप्त नहीं होता है।

समीक्षा–जब आत्मा स्व-आत्मा में ही स्थिर हो जाता है, रम जाता है, लीन हो जाता है तब स्वयं में अनंत अक्षय आनंद का अनुभव करता है। अरिहंत, सिद्ध भगवान् पूर्णतः स्व-आत्मा में स्थिर होने के कारण वे संपूर्ण दुःखों से रहित अक्षय अनंत आत्मोत्थ सुख का अनुभव करते हैं। सिद्ध भगवान् समस्त द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म अथवा घातिया कर्म, अघातिया कर्म नष्ट करके स्वयं में पूर्ण निस्पन्द रूप से लीन होने के कारण अनंत सुख का अनुभव करते हैं तथा अरिहंत भगवान् घातिया कर्म को नष्ट करने के कारण अनंत सुख को अनुभव करते हैं। घातिया कर्म के अभाव से मोह, राग, द्वेष, तृष्णादि क्षय हो जाते हैं तथा अनंत सुख, वीर्य, ज्ञान दर्शन प्राप्त कर लेते हैं जिसके कारण वे शरीर संबंधी या पुण्य-पाप संबंधी या समवसरण संबंधी किसी भी प्रकार के सुख-दुःख वेदन नहीं करते है। जय धवला में वीरसेन स्वामी ने केवली के शारीरिक सुख-दुःख, भूख, प्यास आदि नहीं होने का अत्यंत सूक्ष्म दार्शनिक विवेचन निम्न प्रकार से किया है-

50. चार अघातिया कर्म विद्यमान हैं, इसलिए वर्तमान जिनके देवत्व का अभाव नहीं हो सकता है, क्योंकि चार अघातिया कर्म देवत्व के घात करने में असमर्थ हैं, इसलिए उनके रहने पर भी देवत्व का विनाश नहीं हो सकता है।

शंका–चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान–चार अघातिया कर्म यदि देवत्व के विरोधी होते तो उनकी अघाति संज्ञा नहीं बन सकती थी, इससे प्रतीत होता है कि चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं हैं।

51. नामकर्म और गोत्रकर्म तो अवगुण के कारण है नहीं, क्योंकि जिन क्षीण मोह हैं। इसलिए उनमें नाम और गोत्र के निमित्त से राग और द्वेष संभव नहीं हो सकते हैं। आयुकर्म भी अवगुण का कारण नहीं है। क्योंकि क्षीणमोह जिन भगवान् में वर्तमान क्षेत्र के निमित्त से राग-द्वेष नहीं उत्पन्न होता है और आगे होने वाले लोक शिखर पर गमन के प्रति सिद्ध के समान उनके उत्कंठा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि केवली जिनके विद्यमान आयुकर्म अवगुणों का कारण नहीं है तथा वेदनीय कर्म

भी अवगुणों का कारण नहीं है, क्योंकि यद्यपि केवली जिनके वेदनीय कर्म का उदय पाया जाता है, फिर भी वह असहाय होने से अवगुण उत्पन्न नहीं कर सकता है। चार घातिया कर्मों की सहायता से ही वेदनीय कर्म दुःख को उत्पन्न कर सकता है, परन्तु केवली जिनके चार घातिया कर्म नहीं है, इसीलिए जल और मिट्टी के बिना बीज जिस प्रकार अपना कार्य करने में समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार वेदनीय भी घाति चतुष्क के बिना अपना कार्य नहीं कर सकता है।

शंका–दुःख को उत्पन्न करने वाले वेदनीय कर्म के दुःख के उत्पन्न कराने में घाति चतुष्क सहायक है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान–यदि चार घातियाँ कर्मों की सहायता के बिना भी वेदनीय कर्म दुःख देने में समर्थ हो तो केवली जिनके रत्नत्रय की निर्बाध प्रवृत्ति नहीं बन सकती है। इससे प्रतीत होता है कि घाति चतुष्क की सहायता से ही वेदनीय अपना कार्य करने में समर्थ होता है।

घातिकर्म के नष्ट हो जाने पर भी वेदनीय कर्म दुःख उत्पन्न करता है यदि ऐसा माना जाय तो केवली जिनको भूख और प्यास की बाधा होनी चाहिए परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि भूख और प्यास में भोजन विषयक और जल विषयक तृष्णा के होने पर केवली भगवान् को मोहपने की आपत्ति प्राप्त होती है।

इससे स्वतः सिद्ध हो जाता है कि आत्मा का स्वशुद्ध स्वरूप अनंत आनंद स्वरूप है। अतएव जो जीव जितने-जितने अंश में उस स्वरूप को प्राप्त करता जाता है वह उतने-उतने अंश में बाह्य दुःखों से निवृत्त होता जाता है और आत्मानंद को अनुभव करता जाता है। इसलिए ध्यान में स्थित 8वें गुणस्थान से लेकर आगे के मुनियों को बाह्य दुःख का वेदन नहीं होता है। सामान्य व्यक्तियों को भी अनुभव में आता है कि यदि उनका मन किसी काम में लीन है तो अन्य विषय उन्हें अनुभव में नहीं आता है। अचेतन अवस्था में भी शरीर के दुःख अनुभव में नहीं आता है। एन्थेसीया (अचेतन करने की औषधि) का प्रयोग करके शल्य-चिकित्सा की जाती है, उस समय हाथ, पैर, यहाँ तक की हृदय को काटने पर भी उसकी पीड़ा अनुभव नहीं होती है।

योग्य (भव्य) श्रोता का स्वरूप-कर्त्तव्य व फल

(भव्य श्रोता → सुदृष्टि → श्रावक → सर्वज्ञ)

(चाल : तुम दिल की....., भातुकली....., सायोनारा.....)

भव्य (योग्य) श्रोता ही बनते शिष्य...योग्य शिष्य ही बने सुदृष्टि...
योग्य सुदृष्टि ही बनते श्रावक...योग्य श्रावक ही बने श्रमण...

योग्य श्रम ही बनते सर्वज्ञ...सर्वज्ञ देव ही बनते सिद्ध...
सिद्ध बनने हेतु बनो हे! श्रोता...श्रोता बनना भी है महानता...(1)...

श्रवण होता है अंतिम इन्द्रिय...जिससे परे होते संज्ञी पञ्चेन्द्रिय...
संज्ञी पञ्चेन्द्रिय साकार उपयोग वाला...निकट भव्य वाले सही श्रोता...

गुरु उपदेश से होता सम्यग्दर्शन...जिससे होता है सम्यग्ज्ञान...
जिससे होता सम्यक् आचरण...जिससे होता है परिनिर्वाण...(2)...

एकाग्रचित्त से श्रद्धा भाव से...सुनना चाहिए दिव्य उपदेश...
श्रवण अनंतर स्मरण रखना...मनन-चिन्तन पूर्वक विश्लेषण...

अज्ञात व अनसुलझे विषयों को...जानने हेतु पृच्छना विधेय...
सनम्र सत्यग्राही हित साधक बन...सत्य-तथ्य का स्वीकार विधेय...(3)...

प्रसन्न मन से उत्साह भाव से...ये सब कार्य होना विधेय...
कृतज्ञ बन गुणग्राही होकर...आत्म विकास हेतु ये सब विधेय...

सुनकर स्वभाषा में लिखना चाहिए...लिखित विषय को पढ़ना चाहिए...
समन्वय-समीक्षा करना चाहिए...हिताहित विवेक बढ़ाना चाहिए...(4)...

वाद-विवाद व पक्षपात रहित...पूर्वाग्रह-हठाग्रह से रहित...
उदार चित्त व पवित्र भाव से...शोध-बोध-अनुकरण सहित...

आदि से अंत तक सुनना विधेय...(वक्ता) गुरु को विनय से देखना विधेय...
आदर सत्कार सहमति विधेय...गुरु की सेवा-व्यवस्था विधेय...(5)...

सर्वज्ञ बिना सभी होते अल्पज्ञ...अल्पज्ञ सभी ही होते हैं शिष्य/(श्रोता)...
शिष्य बनकर बनते सर्वज्ञ...'कनक' बनना चाहे उत्तम शिष्य...(6)...

सीपुर, दिनांक 29.07.2016, रात्रि 9.17

(मेरी शिक्षा पद्धति)

स्व-पर हित हेतु मेरी साधना

(पर हित हेतु मेरी विभिन्न पद्धतियाँ)

(योग्य शिष्यों को गलती सुधार हेतु कहूँ अन्य हेतु भावना भाऊँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

स्व-पर हित हेतु काम मैं करूँ, नवकोटि से मैं भावना धरूँ।
आत्महित को मैं पहले ही करूँ, आत्महित सह परहित भी करूँ।।

आत्महित है मेरी समता शांति, ज्ञान ध्यान सहित आत्मविशुद्धि।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश रिक्त, निस्पृह निराडम्बर कामना रिक्त।। (1)

इससे युक्त परहित भी करूँ, अन्य भी मेरे सम बने प्रयत्न करूँ।
इसी हेतु शिक्षा व संस्कार दूँ, दोष दूर करने हेतु प्रयत्न करूँ।।

भाषा-व्याकरण व धर्म सीखाऊँ, सामान्य ज्ञान नैतिक शिक्षा भी दूँ।
तन-मन-स्वास्थ्य के हेतु बताऊँ, प्राणायाम योगासन ध्यान बताऊँ।। (2)

पत्थ्य-अपत्थ्य खान-पान बताऊँ, श्रम सहित विश्राम भी बताऊँ।
पैदल चलने के गुण (भी) बताऊँ, स्वावलंबी होने के गुण बताऊँ।।

समयानुबद्धता का पाठ पढ़ाऊँ, क्रम व्यवस्थित की शिक्षा बताऊँ।
कर्त्तव्यनिष्ठा का भी पाठ पढ़ाऊँ, सहयोगी समन्वय की शिक्षा भी दूँ।। (3)

एकता शांति की शिक्षा भी दूँ, परनिन्दा न करने का पाठ पढ़ाऊँ।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा का त्याग कराऊँ, प्रेम संगठन की भी प्रतिज्ञा दूँ।।

बाल विद्यार्थी से लेकर गृहस्थ तक, ब्रह्मचारी से लेकर आचार्य तक।
दिगम्बर श्वेताम्बर अजैन तक, प्रदेश राष्ट्र व वैश्विक/(वैज्ञानिक) तक।। (4)

यथायोग्य सभी के हितार्थे करूँ, अध्ययन-अध्यापन द्वारा मैं करूँ।
शिविर-संगोष्ठी-कक्षा द्वारा मैं करूँ, शंका-समाधान द्वारा मैं करूँ।।

प्रवचन-साहित्य कविता द्वारा, गलती सुधार प्रायश्चित्त द्वारा।
चर्चा-वार्त्ता व प्रयोग द्वारा, स्व-पर विश्व हित हेतु करूँ मैं सारा।। (5)

ख्याति पूजा लाभ हेतु कुछ न करूँ, ईर्ष्या तृष्णा घृणा से कुछ न करूँ।
परनिन्दा अपमान हेतु न करूँ, दबाव वर्चस्व हेतु न करूँ।।

उदार पावन भाव से मैं करूँ, हिताहित विवेक सहित करूँ।
शालीन-मर्यादा रूप से करूँ, योग्य द्रव्य क्षेत्र काल से करूँ।। (6)

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ धरूँ, यथायोग्य जीवों के साथ मैं धरूँ।
किसी का भी अहित चिन्तन (तक) न करूँ, शिष्य से लेकर पापी के न करूँ।।

सनम्र सत्यग्राही शिष्यों को कहूँ, अन्य के लिए मैं भावना भाऊँ।
स्वयं ही सुधरे ऐसी भावना करूँ, नहीं सुधरने पर शिष्य को कहूँ।। (7)

आगम अनुभव प्रायश्चित्त ग्रंथ से, मनोविज्ञान व शिक्षा शास्त्र से।
स्वप्न-शकुन-अंगस्फूरण से, शिक्षा दूँ भावात्मक शकुन से।।

अयोग्य जन को मैं शिक्षा न दूँ, अयोग्य भी योग्य बने भावना करूँ।
स्व-पर प्रकाशी मैं बनना चाहूँ, 'कनकनन्दी' मैं आध्यात्म चाहूँ।। (8)

सीपुर, दिनांक 06.08.2016, रात्रि 2.07 से 3.17

मेरे लिए करणीय-अकरणीय

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

आत्मविश्वास को मैं पूर्ण चाहता हूँ, आत्मज्ञान चारित्र को पूर्ण चाहता हूँ।
अनात्म काम से मैं निवृत्ति चाहता हूँ, नवकोटि से ये सब करना चाहता हूँ।। (1)

राग द्वेष मोह को मैं नहीं चाहता हूँ, ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा का मैं नाश चाहता हूँ।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश परे, आत्मा की विशुद्धि पूर्ण चाहता हूँ।। (2)

आकर्षण-विकर्षण व द्वंद से परे, समता-शांति को मैं पूर्ण चाहता हूँ।
भेदभाव-पक्षपात नहीं चाहता हूँ, सनम्र सत्यग्राही होना चाहता हूँ।। (3)

पंथ-मत परे अनेकांत चाहता हूँ, 'सच्चिदानंदमय' होना चाहता हूँ।
रीति-रिवाज परे मैं सत्य चाहता हूँ, अलौकिक-आध्यात्मिक धर्म चाहता हूँ।। (4)

ख्याति पूजा परे मैं सिद्धि चाहता हूँ, वाद-विवाद परे मैं निर्विकल्प चाहता हूँ।
तर्क-वितर्क परे अनुभव चाहता हूँ, लौकिक जन परे अलौकिक चाहता हूँ।। (5)

कौन क्या कहता है मानना से परे, शोध-बोध-अनुभव करना चाहता हूँ।
व्यापार-लेन-देन परे चाहता हूँ, धन-जन-मान परे स्व (मैं) को चाहता हूँ।। (6)
तन-मन व इन्द्रिय से परे, संकीर्ण सीमा व बंधनों से परे।
भौतिक राजनैतिक सामाजिक परे, शुद्ध-बुद्ध-आनंद (पूर्ण) 'कनक' चाहता हूँ।। (7)

सीपुर, दिनांक 07.08.2016, प्रातः 8.27

(ब्र. सोहनलाल के कारण यह कविता बनी। ब्र. बोले आचार्यश्री छोटे काम नहीं करते हैं, छोटे काम तो उनके पोता-पोती करते हैं, आचार्यश्री तो बड़े काम करते हैं।)

कनकनन्दी गरुजी नु भाव ने वेवार

-मुनि आध्यात्मनंदी

-सहयोगी क्षुल्लिका सुविक्षमती

मारा गरुजी घणा अनुभवी, कनकनन्दी हरको जग मा कोई नती।
हुरज (सूर्य) भी ने पुगे जे ठेकणे, इये भी पुगी जई मारा गरुजी।।

गुणी थकी भरीला गुण ना पारकी, मुटा कारजा वारा ने परोपकारी।
करुणा भरीली ऐमा कुटी-कुटी ने, दुकिया नु दुक दिकीने रूइ पड़े रे।।

मारा गरुजी धीर वीर ने गंभीर, वाक् पटु वाग्मी ने ज्ञान ना धणी।
निंदा चुगली अपमान कदी न करे, गुण गुणी नी वाहवाई करे।।

काम करता पेला एने खाको बणावे, खाका परतेम (अनुसार) काम जट करी लें।
सब थकी कोक न कोक काम करावी ले, आशीर्वाद पुरस्कार प्रोत्साहन आली दें।।

मोन भी एकला रइने ध्यान करे रे, गेरु चिंतन अने ममन करे रे।
पोतेस पोता (स्वयं) थकी वाते करे रे, पराई सन्ता (चिंता) थकी वेगरा रेवे रे।।

संसारी मनक ने ख्याति पूजा जुवे, गरुजी त चाही आत्मा नी सिद्धि।
अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा नी राके, गरुजी त हीदा हादा भोरा भंडारी।।

ओजस्वी तेजस्वी ने प्रतिभाशाली, नवा नवा शोध-बोध में अगाड़ी (पुरोगामी)।
खुद ने पामवु ही है मोटी उपलब्धि, गरुदेव ने तो खुद (मैं) में ही प्रवृत्ति।।

अनंत भव में मने जेनु ज्ञान न थ्यु, गरुजी ना परसादे थ्यु आना भव में।
'मैं' नु ज्ञान पाइने मु तो धन्य थै ग्यो, गरु नां पगो मां बार-बार नमी रह्यो।।

जगत् भला ना सदा भाव राके, मारा ऊपर भी घणु (लाड) वात्सल्य राके।
इणने जीवु मारे भी बणवु है, आध्यात्मनंदी नाम सार्थक करवु है।।

सीपुर, दिनांक 07.08.2016, मध्याह्न 2.55

I-धार्मिक होने के प्रथम सोपान

नैतिकजन (भद्रजन) के भाव-व्यवहार-फल

(चाल : वैष्णव जन तो तेणे कहिये.....)

नैतिक जन तो तेने कहिये..., जो अनैतिक कार्य न करे हैं।
अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार न करे, आतंकवाद परे हैं...ऽऽऽ।। (ध्रुव)

शोषण-मिलावट-ठगी न करे, चोरी-बलात्कार परे है।
पर-निन्दा-अपमान-वैरत्व न करे, कलह-द्वन्द्व से परे है।। (2)

हत्या-डकैती-अपहरण न करे, मद्य-माँस सेवन परे है।
परपीड़ा से दूर रहे पर-उपकार-सेवा-सहयोग करे है।। (3)

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शून्य भी भद्रपरिणामी होते हैं।
साधु-सज्जन गुण व गुणी के आदर-सत्कार भी करते है।। (4)

संतोष-सदाचारी-मृदुगुणधारी, सरल-सहज वे होते हैं।
सत्य-असत्य के ज्ञान बिना भी, बालकवत् भद्र होते हैं।। (5)

जातिमत-पंथ-भाषा-राष्ट्र हेतु, वैर-विरोध न करते हैं।
धार्मिक-राजनीति-कालागोरा हेतु, पक्ष-पात-द्वन्द्व न करते हैं।। (6)

धनी-गरीब व ऊँच-नीच हेतु, कलह-विसंवाद न करते हैं।
हरिण-गाय सम भद्र परिणामी होते, मरकर स्वर्ग भी जाते हैं।। (7)

भोग-भूमिज यथा मिथ्यादृष्टि मानव व, पशु-पक्षी भद्र होते हैं।
वैसा जो व्यवहार करते मानव उन्हें, मैं नैतिकमय मानता हूँ।। (8)

भद्रमिथ्यादृष्टि भव्य जीव ही सम्यग्दृष्टि पुण्यशाली बनते हैं।
क्रमशः आध्यात्मिक साधना करके, शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय बनते हैं।। (9)

नैतिक बिना न कोई होता है धार्मिक, धार्मिक बिना न आध्यात्मिक।
आध्यात्मिक बिना न मोक्ष मिलता अतः, 'कनक' बना है आध्यात्मिक।। (10)

सीपुर, दिनांक 29.08.2016, अपराह्न 2.32

पुण्यशाली (धार्मिकजन) के भाव-व्यवहार-फल

(चाल : वैष्णवजन तो....., आत्मशक्ति.....)

धार्मिकजन/(पुण्यशाली) तो तेने कहिये, जे सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं।
द्रव्य-तत्त्व व पदार्थ को माने, आत्मा-परमात्मा को भी माने हैं।। (स्थायी)

सच्चे देव-शास्त्र की श्रद्धा करते, अष्ट अंग युक्त होते हैं।
अष्टमद सप्तभय रहित, नैतिक गुणों से भी युक्त हैं।।
संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मनुष्य तिर्यञ्च, देव-नारकी होते धार्मिक हैं।

देव नारकी तो सम्यक्त्वी तक ही होते, यहाँ तक ही पुण्यशाली हैं।।
तिर्यञ्च पञ्चम गुणस्थान तक होते, यहाँ तक ही होते पुण्यशाली हैं। (1)

मनुष्य ही (केवल) सम्यग्दृष्टि से लेकर, होते हैं अरिहंत सिद्ध तक।
नैतिक से धार्मिक आध्यात्मिक तक, होते हैं परमात्मा तक।।

श्रेणी आरोहण से होता शुद्धोपयोग, प्रारंभ जो आध्यात्मिकमय।
उससे पहिले व चतुर्थ गुणस्थान से, होता मुख्यतः शुभोपयोगमय।। (2)

इस अवस्था के बारे में यहाँ पर, कर रहा हूँ मैं कुछ वर्णन।
सम्यग्दृष्टि होते चतुर्थ गुणस्थान वाले, जिसका ऊपर हुआ वर्णन।।

पञ्चम गुणस्थानवर्ती होते हैं श्रावक, जिसके ग्यारह प्रभेद हैं।
शुभोपयोगी साधु होते परिग्रह त्यागी, जिसके द्वय प्रभेद हैं।। (3)

अणुव्रतधारी होते हैं श्रावक, महाव्रतधारी होते श्रमण हैं।
दोनों का लक्ष्य आत्मा से परमात्मा बनना, किन्तु गृहाश्रमी श्रावक हैं।।

इसीलिए श्रावक कम पुण्यशाली, श्रमण होते अधिक पुण्यवंत हैं।
साधु बने बिना श्रावक नहीं, बन पाता श्रेष्ठ आध्यात्मिक है।। (4)

श्रमण ही आध्यात्मिक साधन से, बनते हैं अरिहंत सिद्ध तेरे!
श्रावक भी श्रमण बनकर, बनते हैं अरिहंत सिद्ध रे!

इसके अतिरिक्त (केवल) सत्ता-संपत्ति वाले, न होते पुण्यवंत/(धार्मिक) हैं।
मिथ्यादृष्टि के बाह्य धार्मिक क्रिया भी, नहीं है सातिशय पुण्य रे! (5)

जैन धर्म की गुणस्थान-व्यवस्था, अतुलनीय अद्वितीय है।
आत्मा को परमात्मा बनाने हेतु, 'कनक' को लगे श्रेय है।। (6)

सीपुर, दिनांक 29.08.2016, रात्रि 9.30

III-धार्मिक होने के अंतिम तृतीय सोपान

आध्यात्मिक के भाव-व्यवहार-फल

(चाल : वैष्णवजन तो....., आत्म शक्ति.....)

आध्यात्मिक जन तो तेने कहिये, जे स्वात्मा निवास करे हैं।
राग द्वेष मोह काम क्रोध त्यागकर जो समता भाव धरे हैं।। (1)

चतुर्थ गुणस्थान से अंकुर रूप से, आध्यात्मिक भाव जगे हैं।
क्रमशः वृद्धि हो सातिशय सप्तम गुणस्थान में वृक्ष रूप धरे है।। (2)

श्रेणी आरोहण में वृद्धि होकर, तेरहवाँ गुणस्थान में पूर्ण होवे है।
चौदहवें गुणस्थान व सिद्ध अवस्था में, पूर्ण आध्यात्मिक होवे हैं।। (3)

आध्यात्मिक है शुद्ध आत्म का स्वभाव, जो शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय है।
अनंत ज्ञानदर्शन सुख वीर्यमय, अमूर्तिक अव्याबाधमय है।। (4)

शत्रु-मित्र भाई बंधु (से) परे, परम समर समय है।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि परे जो, शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय है।। (5)

ख्याति-पूजा-लाभ आकर्षण-विकर्षण, परे (जो) आत्मा में ही लवलीन है।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश शून्य, निर्विकार-निरंजन है।। (6)

द्रव्य-भाव नोकर्म रहित, सच्चिदानंदमय (स्व) रूप है।
जन्म-जरा-मृत्यु रहित स्वयं में ही, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप है।। (7)

तन-मन व इन्द्रिय रहित, स्वशुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायमय है।
चैतन्य चमत्कार स्वयं में स्वयंपूर्ण, 'कनक' का निजशुद्ध स्वरूप है।। (8)

सीपुर, दिनांक 30.08.2016, मध्याह्न 3.13

अलौकिक गणित व आध्यात्मिक रहस्यमय शोधपूर्ण कविता

मेरा शुद्ध विश्वरूप स्मरण

(विविध चाल व याथातथ्यानुपूर्वी कविता : चंदा है तू....., सायोनारा....., भातुकली (मराठी)....., ॐकारस्वरूपा (मराठी)....., आत्मशक्ति....., जीना यहाँ....., तू ही माता....., बिन गुरु ज्ञान.....)

आत्मा हूँ मैं परमात्मा हूँ मैं...शुद्ध-बुद्ध व आनंद हूँ मैं...

गुण हूँ मैं व गुणी हूँ मैं...अनंत गुणगण सहित हूँ मैं...
द्रव्य हूँ मैं तत्त्व हूँ मैं...मेरा ही पदार्थ हूँ मैं...
सत्य हूँ मैं चित् हूँ मैं...सच्चिदानंद रूप मैं...
ज्ञान हूँ मैं ज्ञानी हूँ मैं...अनंतानंत ज्ञानी हूँ मैं...
एक हूँ मैं अनेक हूँ मैं...संख्य असंख्य अंनत हूँ मैं...
अस्तित्व मैं वस्तुत्व मैं...प्रमेयत्व-द्रव्यत्व मैं...
अगुरुलघु-प्रदेशत्व हूँ मैं...चेतन व अमूर्तत्व हूँ मैं...
कारण मैं कार्य हूँ मैं...निमित्त उपादान रूप मैं...
कर्त्ता हूँ मैं भोक्ता हूँ मैं...कर्म हूँ मैं करण हूँ मैं...
सम्प्रदान मैं सम्बन्ध हूँ मैं...षट्कारक अभिन्न हूँ मैं...
गुरु हूँ मैं शिष्य हूँ मैं...पूज्य-पूजक हूँ मैं...
ध्यान हूँ मैं ध्याता हूँ मैं...ध्यान-ध्येय परे ज्ञान मैं...
उत्पाद मैं व्यय हूँ मैं...ध्रौव्य रूप अविनाश मैं...
सर्वज्ञ हूँ अतः सर्वगत हूँ मैं...स्व-स्थित अविभागी हूँ मैं...
चैतन्य चमत्कार हूँ मैं...'कनक' अनंतानंत मैं...
बिन्दु हूँ मैं रेखा हूँ मैं...परिधि क्षेत्रफल घन हूँ मैं...
गुण हूँ मैं गुणाकार हूँ मैं...अधिक न्यून घनाघन हूँ मैं...
भाजक हूँ मैं भागाकार मैं...भागफल व भागशेष हूँ मैं...
पूर्ण हूँ मैं शून्य हूँ मैं...आदि-अंत-मध्य हूँ मैं...
केन्द्र हूँ मैं वृत्त हूँ मैं...करण व परिणाम रूप मैं...
स्वयंभू मैं अनादि हूँ मैं...अनंतानंत इयत्ता हूँ मैं...
अणु से भी सूक्ष्म रूप हूँ मैं...विश्व से भी महानतम् हूँ मैं...
इन्द्रिय-यंत्र से परे हूँ मैं...मन-बुद्धि से परे हूँ मैं...
चेतन हूँ मैं अचेतन हूँ मैं...लौकिक गणित परे हूँ मैं...
सर्वज्ञ ज्ञानगम्य अनेकांत मैं...अवाक् वचन कनक/(अशब्द) हूँ मैं...

सीपुर, दिनांक 31.08.2016, प्रातः 9.18